राम संदेश

भक्ति, ज्ञान एवं कर्मयोग की आध्यात्मिक पत्रिका

वर्ष 68 | जनवरी-जून 2020 | अंक 1

रामाश्रम सत्संग (रजि.), ग़ाज़ियाबाद

विषय सूची

क्रमांक		पृष्ठ
1.	भजन	01
2.	मार्गदर्शक कहलाने वाले सूफ़ी व साधुओं की कसौटी *पूज्य लालाजी महाराज*	02
3.	मन, विचार-शक्ति और मुक्ति *डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज*	06
4.	अनमोल वचन	15
5.	जैसा हम कर्म करते हैं वैसा उसका फल मिलता है... *परमसंत डॉ. करतार सिंह जी साहब*	18
6.	वसंत भण्डारे पर आचार्य जी का विशेष सन्देश *परमसंत डॉ. करतार सिंह जी साहब*	17
7.	गुरु या प्रभु की सच्ची पूजा शिष्य का समर्पण-अनुपालन *परमसंत डॉ. करतार सिंह जी साहब*	19
8.	अबुबकर सबली *प्राचीन मुस्लिम संतों के जीवन चरित्र*	22
9.	उपदेश वचन	30
10.	विवेक विचार	33
11.	शांति पाठ (तत्व विवेचना)	39
12.	प्रेरक प्रसंग	46
13.	हर कृति ईश्वर से जोड़ दें	53
14.	रामाश्रम सत्संग की वेबसाइट तथा फेसबुक ग्रुप्स	55

राम संदेश

वर्ष 68 जनवरी–जून 2020 अंक–1

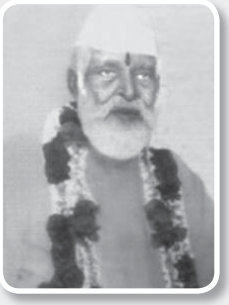

संस्थापक : ब्रह्मलीन परमसंत डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज
संरक्षक : ब्रह्मलीन परमसंत डॉ. करतार सिंह जी
सम्पादक : डॉ. शक्ति कुमार सक्सेना (सर्वोच्च आचार्य एवं अध्यक्ष)

भजन

सब कुछ जीवत का व्यौहार।
माता पिता भाई सुत बन्धु औ पुनि गृह की नार।
तन से प्राण होत जब न्यारे, टेरत प्रेत पुकार।
आध घड़ी कोऊ नहिं राखत, घर से देत निकार।
मृग तृष्णा ज्यों जग रचना है, देखो हृदय विचार।
कहें नानक भज सतनाम नित, जाते होय उधार।।

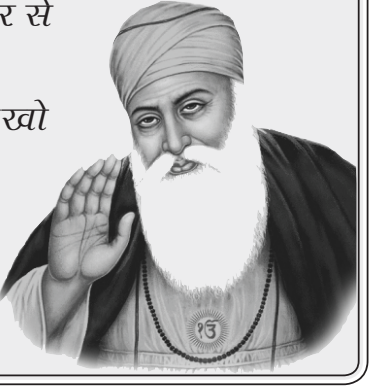

परमसंत महात्मा रामचन्द्र जी महाराज.....

मार्गदर्शक कहलाने वाले सूफ़ी व साधुओं की कसौटी

अगर तमाम उम्र सूफ़ी और साधु लोग दूसरे लोगों को उपदेश करते रहें और राह, मंज़िल और ठहराव की जगहों से नावाकिफ़ रहे तो उनकी मिसाल ऐसी है जैसे बूढ़ी औरतें जिनको तमाम उम्र के कच्चे तजुर्बे और किसी–न–किसी तरह चन्द दवाओं के नाम याद हो गए हैं और वो इलाज किया करती हैं, या जो लोग कि थोड़े–बहुत पढ़े लिखे हैं और अमृत–सागर और इलाजुलगुर्बा की किताबें देखकर इलाज करने लग जाते हैं और लोगों का नुकसान करते रहते हैं।

बरख़िलाफ़ इसके वह साधु महात्मा जो मन्ज़िल और मुक़ाम और राह के ठौर ठिकाने से खूब वाकिफ़ होते हैं वह ऐसे होते हैं जैसे जानने वाले वैद्य और हक़ीम जिनको कि anatomy (यानी बदन के अन्दर के अंग–प्रत्यंग) का इल्म है और बीमारी की सब किस्में जानते हैं और उनको यह मालूम है कि किन वजहों से बीमारियाँ पैदा होती हैं और फिर उनकी अलामात निशानियां (symptoms) और तशखीसें, रोग की पहिचान (diagnosis) और उनके अलहदा इलाज खूब मालूम हैं, इनके अलावा पुराने मशहूर हकीमों के तजुरबे और हाल की तहकीकात और हाल की मालूमात की ताज़ा–तरीन (latest) खबर रहती है।

दूसरे तौर पर इस तरह समझना चाहिए कि जो सूफी या साधू इल्म लतायफ़ के पूरे वाक़िफ़कार हैं उनकी मिसाल ऐसी है जैसे जंगलों में रास्ता बताने वाले जो हमेशा वहीं रहते हैं और जंगल की सब ऊंची–नीची राहों से वाक़िफ़ हों और आबादी और खतरे की जगहें भी खूब जानते हैं।

बरख़िलाफ़ इसके इस इल्म से नावाकिफ़ सूफ़ी ऐसे हैं कि जिस तरह चन्द आदमी रास्ते से जंगल में भटक गए हों और रास्ते से अलग होकर बेरास्ते होकर भटकने लगे हों। उनमें से कुछ तो सर टकरा–टकरा कर मर गए क्योंकि उनका न कहीं इरादा था और न कोई राह जानी हुई थी और बाज़ लोग किसी न किसी तरह जंगल से निकल आएं।

जब मुद्दत के बाद अपने घर वापस आये तो हर शख्स ने अपना हाल अलग–अलग

बयान किया और पूरी बात किसी ने भी नहीं कही। बल्कि एक की बात दूसरे की बात से बिलकुल खिलाफ़ थी। अब इन सब में से कोई भी ऐसा नहीं है जो एक दूसरे की बरख़िलाफ़ी को दूर कर सके और असल तत्व को बतला सके और जो-जो बरख़िलाफ़ियाँ हैं उनकी ज्यों की त्यों अपने-अपने मौके और जगहों पर रख कर द्वेष-भाव को दूर कर दें। सुनने वाले हैरत में रह जाते हैं कि कोई बात उनकी समझ में नहीं आती और वहम और दुविधा के शिकार हो जाते हैं।

इसलिए जो लोग 'अहलेतमकीन' हैं यानी जिनको साक्षात्कार होने की स्थिति प्राप्त हो गयी है, वे लोग हैं जो अवतारों के वारिस और क़ायम मुकीम (स्थितप्रज्ञ) कहलाने के क़ाबिल हैं। अगर कोई आदमी इन बुज़ुर्गों की राह पर चलना चाहे तो दरअसल उनकी राह बिना इल्म लतायफ़ यानी कमलों (चक्रों) का ज्ञान हासिल किये नहीं मिल सकती।

सीधा रास्ता वह है जिसमें न कोई तक़लीफ़ है और न भटकाव, और जो बिना चक्रों और कमलों के ज्ञान के नामुमकिन और बेफ़ायदा भी है। ग़रज़ कि इल्म-लतायफ़ यानी राह और मंज़िलों का ज्ञान परमात्मा की बड़ी देन है, जैसा कि ऊपर बयान किया गया है, जो ईश्वर ने आखिर ज़माने के बुज़ुर्गों को दी है।

अहले सलूक या पन्थाई दो किस्म के होते हैं। इस हिसाब से जो रास्ता 'ज़िक्र' यानी जाप, शब्द-अभ्यास भजन का इस वक्त रायज़ (प्रचलित) है वह दो तरह पर है और 'फ़िक्र' यानी मनन, चिन्तन, स्मरण, मराकबा भी दो तरह का होता है।

पहली किस्म तो यह है कि एक शख़्स को परमार्थ हासिल करने का शौक पैदा हुआ। उसने जिस तरह बन सका, एक रास्ता पकड़ कर चलना शुरू किया। आखिर में किसी वक्त उसको शांति मिली और ऐसे असर उससे ज़ाहिर हो गए या होने लगे कि दूसरों को सिखलाने की क़ाबिलियत उसमें मालूम होने लगी और दूसरों को बतलाने लगा।

अब जिस जगह या मुक़ाम पर उसको पहुंचकर शांति नसीब हुई थी, उसी जगह और मुक़ाम तक का इशारा उसने अपने मुरीदों (शिष्यों) को दे दिया और इसका मतलब यह है कि इसके आगे की ख़बर उसको नहीं होती और सिवा इस कमाल के जो उसको हासिल हो चुका है, कोई दूसरा कमाल उसमें नहीं है।

बस उसके मुरीदों ने उसकी बतलाई हुई बात को याद कर लिया और उस पर अपना पूरा भरोसा करके आगे की तलाश से हाथ उठाकर इत्मीनान करके बैठे रहे और उन्होंने यह समझ लिया कि बस अब आखिरी कमाल और दर्ज़ा यही है - इसके

सिवा अब कुछ और हासिल करने को बाक़ी नहीं रहा।

अक्सर इस किस्म के साधू सूफ़ी सिर्फ एक ही कमाल और निस्बत को रखते हैं। मिसाल के तौर पर यह समझ लो कि किसी ने महज़ क़ल्ब के लतीफ़े पर उबूर हासिल कर लिया या लतीफ़ेरूह या सिर या ख़फ़ी या अख़फ़ा या न''स नातका वग़ैरा में किसी एक या दो पर काबू पा लिया। हिन्दू साहबान (भाई–बंधु) इस तरह समझ लें कि एक साधु ने हृदय चक्र को बेध लिया या भृकुटि स्थान और आज्ञा–चक्र को पार कर गया या ज़्यादा–से–ज़्यादा त्रिकुटी के मुक़ाम को तय कर लिया, तो यह काफी नहीं है क्योंकि आगे अभी बहुत मुक़ाम तय करने को बाकी हैं।

ऐसी सूरत में किसी अभ्यासी को महज़ शौक़ और बेकरारी–तलाश और तड़प की कैफ़ियत हासिल होकर रह गयी और उसके आगे न बढ़ा। बाज़ों को जो रूहों से मुलाक़ात या फ़रिश्तों और देवताओं की मिसाली शक्ल या विराट देश से सम्बंधित होकर रह गया और आगे न चले या शब्द अभ्यास की मायावी सूरतों पर अभ्यास हो गया, असल शब्द तक रसाई (पहुँच) न हो पायी।

इस सूरत में साधुओं और सूफियों का तमाम लतीफ़ों यानि चक्रों में से एक या दो लतीफ़ा यानि चक्र मुहज़्ज़िब (प्रज्वलित) हो जाता है, बाक़ी सब उसी तरह अन्धकार और मंद गति में रह जाते हैं। यह कमाल नहीं है। अगर तुम्हारे सब लतीफ़ों का कमाल किसी तरह तुम्हारे सामने शक्ल बन कर आ जावे तो तुम अगर देख सकोगे तो यह देखोगे कि तुम्हारा आधा चेहरा स्याह है और आधा सफ़ेद या धब्बेदार।

हमारे बुज़ुर्गों में से ज़्यादा तादाद में ऐसे बुज़ुर्ग गुज़रे हैं कि जो शख़्स सामने आता था उसका हाल और अन्दर सूक्ष्म शरीर का हाल फ़ौरन दरयाफ्त करके बता देते थे कि फ़लां शख़्स का फ़लां लतीफ़ा ज़ाकिर (चक्र जाग्रत) है और फ़लां शख़्स का दूसरा और उसके मुकाम और सूक्ष्म शरीर की सूरत देख लेते थे। हमारे मुर्शिदना (गुरुदेव) ने एक मरतबा, जब वह एक मकान में तशरीफ़ ले गए, तो यह बतला दिया कि इस ख़ास मुक़ाम और जगह में फ़लां साहब बैठ कर ज़िक्र शग़ल किया करते हैं और उस मुक़ाम पर फ़लां। अब ख़्याल फरमाएं कि आपका इल्म लतायफ़ किस दरजे बारीक और लतीफ़ (सूक्ष्म) है।

ऐसे सूफ़ी और साधू जिनका एक आध लतीफ़ा ज़ाकिर (वक्र) हो गया या कोई मुक़ाम जाग्रत हो गया और एक निस्बत हासिल हो गयी, अपने आपको कामिल समझ कर यह डींग मारा करते हैं कि शरीयत (धर्मशास्त्र) मौलवियों के लिए है और खुश्क ज़ाहिदों के वास्ते है, हम जिस मुक़ाम पर पहुंचे हैं वहाँ शरीयत का कुछ दख़ल नहीं

है। अफ़सोस है कि बिना कुछ लतीफ़ों और मुक़ामों के तय किये हुए शरीयत अधूरी और नाक़िस बेकार रहती है।

असल और हक़ीक़ी शरीयत पर तब पहुँचता है जबकि कुल मुक़ामात तय हो जाएँ। बिना शरीयत यानी धर्मशास्त्र के फ़क़ीर और साधू नाक़िस हैं। बड़े-बड़े मस्त फ़क़ीरों और साधू महात्माओं ने अब तक इस मुअम्मे (भेद) को नहीं समझा है कि शरीयत क्या चीज़ है। इसलिए जिनका यह लोक नहीं संभला उनका परलोक क्या संभलेगा?

जो शौक़ीन लोग अभ्यास करते हैं उनकी पहली किस्म की कैफ़ियत बयान में आ चुकी है। अब दूसरी तरह चलने वालों की बताई जाती है। दूसरी तरह ज़िक्र और फ़िक्र यानी भजन और स्मरण के अभ्यास को इस तरह हासिल किया करते हैं कि क़ामिल और पूर्ण संत सद्गुरु के बताये हुए अभ्यास को उनके सत्संग में जाकर करते हैं। यह संत सद्गुरु वे होते हैं जिनकी तारीफ़ संत मत की किताबों में लिखी है और जिनको उन दयालु और मालिकेकुल ने अपनी दया की मौज़ से दयाल देश से सीधा इस जंगल के जीवों का उद्धार करने और इस भव-सागर से पार उतारने की ग़रज़ से समय-समय पर भेजा है।

पहले गुज़रे हुए महात्माओं से जो-जो बातें और मुक़ामात तय न हुए और बाक़ी रह गए वह अब इन आख़िरी ज़माने के बुज़ुर्गों पर उतारे गए, ताकि कोई कसर तालीम में बाक़ी न रह जाये और मालिकेकुल का जो इरादा था वह इनको भेज कर पूरा किया गया। जो बातें कि पूर्णगति और मुक़्क़मिल बनाने के लिए दरकार थीं वह इन बुज़ुर्गों के हृदय में बराह-रास्ता उतारी गयीं। पन्थाइयों और राह चलने वालों को बराबर सिलसिले और तरतीब के साथ मंज़िलों को तय कराते आये और हज़ारों-हज़ारों तालिबों और जिज्ञासुओं को इन महात्माओं ने क़ायदों की पाबन्दी, जैसी कि होनी चाहिए थी, कराई और खुद की है। हर दर्द की दवा और हर आफ़त का इलाज इनको मालूम रहता है।

इस तरह पर ऐसे मुक़्क़मिल उस्तादों से सीखे हुए लोग असल मुक़ाम और पद को हासिल करते हैं। किसी दरमियानी मंज़िल और रास्ते पर इन लोगों का अटकाव नहीं होता और न रास्ते की किसी मंज़िल में अटक कर अधूरे रह जाते हैं, लेकिन अगर इनको लातायफ़ और मंज़िलों का तफ़सीलवार (ब्योरेवार) ज्ञान नहीं हो पाता तो यह ज़रूर है कि इनको चंद तरह के नुक़सान पहुँचने का डर होता है।

प्रवचन गुरुदेवः डॉ.श्रीकृष्ण लालजी महाराज

मन, विचार-शक्ति और मुक्ति

तुम्हारा शरीर असल में तुम्हारे मन की धाराओं की घनी शक्ल है। जैसा तुम्हारा मन है, वैसा ही शरीर है। जैसे-जैसे तुम्हारा मन बदलता जाता है, वैसे ही तुम्हारा शरीर भी बदलता जाता है। बिना पूछे लोग बता सकेंगे कि तुम्हारे विचार कैसे हैं और तुम्हारा व्यवसाय क्या है। क्या चिड़ीमार को देखकर तुम्हें यह ख़्याल पैदा नहीं होता कि यह कोई निर्दयी आदमी है, या मछली पकड़ने वाले को देखकर उसके विचारों की दुर्गन्ध तुमको अनुभव नहीं होती? क्या किसी सन्त को देखकर तुम्हारे हृदय में प्रेम की लहर हिलोर नहीं मारने लगती, और उसके आदर के लिए हाथ नहीं उठ जाते?

जानवरों और बच्चों के दिल साफ होते हैं। बच्चे को प्रेम से देखो, उसके लिए अगर तुम्हारे दिल में प्रेम है तो वह तुम्हारे पास चला आयेगा, और अगर तुम्हारे दिल में नफरत है तो तुम्हारी सूरत देखकर रोने लगेगा या बुलाने पर पास नहीं आयेगा। मालिक के सच्चे भक्तों के दिल में हर एक प्राणी के लिए अथाह प्रेम होता है जिसके प्रभाव से भयंकर हिंसक पशु भी उनके सम्पर्क में आकर अपना स्वभाव छोड़ देते हैं। क्या तुम नहीं जानते कि शेर सन्तों के सम्पर्क में आकर उनके पास आदर पूर्वक बैठ जाता है। साँप चुपचाप पड़ा रहता है। ऐसा इस कारण है कि सन्तों के दिलों में प्रेम है, जिसकी धारें निकलकर प्राणी को घेरती हैं। उसी प्रभाव से सब उनसे प्रेम करने लगते हैं।

जैसा इन्सान का दिल होगा, उससे उसी प्रकार की धारायें निकल-निकलकर वायुमंडल में फैलेंगी, और जो कोई उस वायुमंडल में आयेगा, उस पर असर करेंगी। क्या तुमने नहीं सुना कि छोटे बच्चे विषैले साँपों से खेलते रहते हैं और साँप उनको ज़रा भी नुकसान नहीं पहुँचाते। अपने दिल में चिड़ियों से प्रेम करो, और देखो वो निडर होकर तुम्हारी थाली में से अपनी खुराक ले जायेंगी। बिल्लियों से प्रेम करो, वो तुमको खाना खाना मुश्किल कर देंगी, और वो तुमसे अपनी खुराक ले लेंगी।

जानवर तुम पर हमला करते हैं कि तुम्हारे दिल में उनके लिए दुश्मनी है। तुम दुश्मनी के बजाय मुहब्बत करो, तो वे तुम्हारे चारों तरफ पालतू कुत्तों के तरह फिरेंगे।

असलियत जो कुछ है, तुम्हारे विचारों में है, और मन उन विचारों की मिली जुली धारों का नाम है। शरीर उसका अक्स (प्रतिबिम्ब) है, क्योंकि तुम्हारी दृष्टि शरीर की तरफ है। वह तुमको दिखाई दे रहा है। दिल की तरफ से तुमने आँखें बन्द कर रखी हैं, इसलिए दिल तुमको दिखाई नहीं देता। शरीर दिखाई देता है, और सब कुछ उसी को समझ रहे हो। एक बच्चा शीशे में अपना अक्स देखकर, उसको दूसरा बच्चा ख़्याल करता है, और उससे खेल रहा है क्योंकि उसको अपने शरीर का ज्ञान नहीं है। जब उसको अपने शरीर का ज्ञान हो जायेगा शीशे को एक तरफ फेंक देगा और अपने शरीर की देखभाल में लग जायेगा। यही हाल तुम्हारा है।

अगर चाहते हो कि तुमको असली आनन्द मिले तो किसी वक्त के पूरे सन्त सद्गुरु से सम्बंध जोड़ो और उससे 'असल' के जानने का भेद मालूम करो। आहिस्ता-आहिस्ता तुम्हारा भ्रम दूर हो जायेगा, असली ज्ञान प्राप्त होगा, और हमेशा-हमेशा के लिए दु:ख निवृत्ति हो जायेगी। यही मनुष्य जीवन का असली ध्येय है। तुम सोचो तुम कौन हो? तुम्हारी ग़रज़ यहाँ आने की क्या है? प्रकृति माँ दुनियाँ में हर काम किसी न किसी ग़रज़ से करा रही है। क्या तुमको यहाँ बेगरज़ भेजा गया है? नहीं, कभी नहीं। इसमें भी एक ग़रज़ छुपी हुई है। सोचो और फिर सोचो। अगर मालिक मेहरबान है तो तुमको जरूर असली ज्ञान प्राप्त होगा और मालिक तो हमेशा ही मेहरबान है पर दुर्भाग्य यह है कि हम उसकी तरफ झुकते नहीं हैं।

मुक्ति और निर्वाण, दोनों का मतलब करीब-करीब एक ही है। दोनों का मतलब आजादी का है। जिस्म पर निगाह है, इसी को सबकुछ समझ रखा है। अगर यह तन्दुरुस्त है तो खुशी है, अगर यह बीमार है तो तकलीफ है और परेशान व दु:खी है। अब खुशी का दारोमदार (निर्भरता) इन्द्रियों की ख़्वाहिशात और मन की वासनाओं के पूरा होने पर है। अगर ये ख़्वाहिशात (इच्छाऐं) पूरी होती हैं तो खुशी है, मगर नहीं तो दुख होता है।

परमात्मा ने रहम किया, असलियत और खुली, ख़्वाहिशात पर आहिस्ता-आहिस्ता क़ाबू पाया। अब तमाम ख़्वाहिशात क़ाबू में हैं, और अब खुशी का दारोमदार (निर्भरता) इन पर नहीं है। अब ख़्वाहिशात परेशान नहीं करती। राज़ी-बा-रज़ा है, (जो प्रभु की इच्छा है उसी में प्रसन्न है) हर हालत में खुश हैं, कोई परेशानी नहीं, तबियत में सकून (चैन) है। एक अजब आनन्द हर वक्त मालूम होता है, जिससे तबियत खुश रहती

है। अब मन से निगाह ऊँची हो गई है, और अब इससे छुटकारा होकर निगाह आनन्द पर है। जब तक आनन्द आता रहता है, तबियत खुश है। जब आनन्द का आना बंद हो गया, तबियत फिर परेशान हो जाती है।

और आगे बढ़े, अब बेक़ैफी (उपरामता) की हालत है, इसमें न आनन्द है, न ग़ैर आनन्द, न किसी से प्यार है न दुश्मनी, न किसी के पैदा होने या मरने का रंज, न जिस्म से मतलब, न इन्द्रियों से ताल्लुक। न ख़्वाहिशात हैं न आनन्द की इच्छा, किसी चीज़ से वास्ता नहीं, हर हालत में एक रस है। जिन्दगी रहे या मौत आ जाये, दुनियाँ गुलज़ार रहे या आग बरसे, उनकी हालत में कोई फ़र्क इन बातों से नहीं आता। अपनी आत्मा में आप मग्न हैं, और सदा एकरस हैं। यही मुक्ति है– यही निर्वाण है। जहाँ अनानियत (अहंपना), खुदी, मेरा–तेरा सबकी जंजीरें टुकड़े–टुकड़े हो जाती हैं, जिन्दगी अपने आपको आला क़ानून के हवाले कर देती है।

इसकी तकमील (पूर्णता) एक जन्म में भी हो सकती है, और सैकड़ों जन्मों में भी नहीं हो सकती। जिनको ये हालत नसीब हो जाती है, उन्हीं को सन्त, औलिया, गुरु वग़ैरा नामों से पुकारते हैं। कफ़नी पहनने वाले, तिलक लगाने वाले, धुआँधार व्याख्यान करने वाले सच्चे सन्त नहीं होते। भेष बदल लेना बड़ा आसान है लेकिन मन व इन्द्रियों को जीत लेना किसी बिरले ही का काम है।

किसी शायर ने क्या खूब कहा है–

'निहंगो अज़दहा–ओ शेरो–नर मारा तो क्या मारा,
बड़े मूज़ी को मारा नफ़्से–अम्मारा को गर मारा।

क्रोध से मुक्ति पाने के लिए हमें स्वयं को विनम्र और तुच्छ समझना चाहिये। इतना ही नहीं, हमें स्वयं को ऐसा बनाने के लिए कोशिश करनी चाहिए कि यही धारणा हमारे शरीर के रोम–रोम में समा जाये। आध्यात्मिकता में शांत और ठण्डे मिजाज की ही जरूरत होती है। हृदय इतना कोमल हो जाना चाहिए कि हवा के मामूली झोंके से झूलने लगे।

– आदि गुरु पुज्य लाला जी महाराज

परमसंत डॉ. श्रीकृष्ण लालाजी महाराज के
अनमोल वचन

- मन बाहरी चीज़ों का रसिया है। शुरु में अन्दर की तरफ़ मोड़ने में इसको दु:ख होता है और इससे वह भागता है। लेकिन अभ्यास करते रहने से और बाहर से तबियत हटा देने से अन्दर की तरफ़ ठहरने लगता है और अन्तर में ठहरने से उसे अभ्यास में आनन्द आने लगता है। मन जन्म जन्मान्तर से बर्हिमुखी है, अन्तर में घुसने के लिए इसे समय की ज़रूरत है। इसलिए घबराना नहीं चाहिए, दृढ़ता से काम करते रहना चाहिए।

***

- हमें दूसरों की त्रुटियाँ क्यों दिखाई देती हैं? हमारे स्वयं के अन्तर में त्रुटियाँ होती हैं, तभी दूसरों के अवगुण दीखते हैं। यदि अपना मन स्वच्छ, सात्विक और कामनाओं, वासनाओं से मुक्त हो, तब दूसरों के अवगुण कम ही देख पायेंगे। यदि किसी में त्रुटि दीखती है और वह वास्तव में ठीक है तो ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए कि हे प्रभु! उस मनुष्य को इन त्रुटियों से मुक्त करो।

***

- जितना अधिक मनुष्य क्रोधी होगा उतना ही उसके अन्तर में अधिक अहंकार छिपा हुआ होगा। क्रोध भले ही न आये, परन्तु यदि कोई ऐसी बात हो जाती है जो मनुष्य की इच्छा के अनुकूल नहीं होती और वह अन्तर में दु:खी होता है, तो यह अवस्था भी नीची है। परमार्थी की ऐसी अवस्था हो जानी चाहिए कि वह हर परिस्थिति में प्रसन्नचित्त रहे, चाहे कोई बात अपने अनुकूल हो या प्रतिकूल हो।

***

- मैं नहीं समझता कि यदि कोई व्यक्ति वास्तव में ईश्वर के लिए तड़पता है और वह किसी सच्चे संत के पास जाये, फिर उसे धोखा मिले? धोखा दुनियादारी में है।

***

- दुनियाँ में उतना फँसे जितने में कम से कम काम चल सके, जितना कम से कम ज़रूरी हो। किसी काम को करने से पहले खूब अच्छी तरह सोच ले कि क्या यह काम वास्तव में ज़रूरी है, क्या इसके बिना काम नहीं चलेगा? अगर ज़रूरी है तो करे वर्ना छोड़ दें।

***

- भक्ति बढ़ाने के लिए सबसे ऊँचा तरीका यह है कि मन के फन्दे से बचे और ईश्वर से नाराज़ न हो। ज़रा गर्मी हो जाय तो कहने लगते हैं 'हाय बड़ी तपन है'। कभी बारिश ज़्यादा हो गई तो लगे परमात्मा को कोसने। यह सब बुरी बातें हैं। परमात्मा के सब काम सर्वहित के लिए होते हैं। वह जो करता है, सब अच्छाई के लिए ही करता है। लेकिन हम उसके कामों को अपने मन की कसौटी पर परखते हैं। जिस हाल में वह रखे उसमें खुश रहो। उफ़ भी न करो– ख़्वाहिश न उठाओ। 'शुक्र' वही है कि अग़र तकलीफ़ भी हो रही है तो उसकी सराहना करो। हर समय राज़ी–ब–रज़ा रहो।

***

- गुरु ने जो दिया है उसको ईश्वर का नाम समझकर जाप करते रहो, लय तक पहुँच जाओगे।

***

- जिस आनन्द से मनुष्य की तृप्ति न हो और ख्वाहिशात बनी रहें, वह मन का आनन्द है। मन के आनन्द में एक आनन्द के बाद दूसरे आनन्द की ज़रूरत होती है। ऐसा आनन्द Temporary (अस्थायी) होता है और independent (स्वतंत्र) नहीं होता। इसका आधार किसी दूसरी वस्तु पर होता है। आत्मा स्वयं आनन्द है, उसका आनन्द permanent (स्थायी), everlasting (सदा क़ायम रहने वाला) होता है। उसका आधार किसी दूसरी वस्तु पर नहीं होता। वह आनन्द इतना ऊँचा होता है कि उसके सामने दूसरा आनन्द कोई मायने नहीं रखता।

***

- अपना रूप समझो। आत्मा को मन से हटाओ, वासनाओं से रहित हो जाओ। जब आत्मा के ऊपर का परदा हट जाएगा फिर तुम अपना रूप देख सकोगे कि तुम कौन हो? तुम तो ईश्वर खुद हो। जब तुम अपने को पहचान जाओगे तब किसकी पूजा करोगे? तुम स्वयँ आनन्द हो, आनन्द की तलाश कहाँ करते हो?

***

- दुनियाँ से सिर्फ उतना ही ताल्लुक रखो जितने में काम चल जाय। ज़्यादा मत फँसो। लालाजी (मेरे गुरुदेव) कहा करते थे कि तुम्हें खुश रहने का गुर बतायें। वह गुर यह है कि अगर एक जूता मौजूद है तो दूसरा खरीदने मत जाओ। कहने का मतलब यह है कि जब एक चीज से काम चल सकता है

तो दुहैरी-तिहैरी चीजें मत खरीदो। जितने उनमें attach (लिप्त) रहोगे उतने फँसोगे।

***

- अपने आपको सबका सेवक समझ कर गुरु में ईश्वर का रूप देखकर, सब चीज़ों को गुरु की कृपा से मिली समझ कर चलते जाओ। मन से पूछते चलो 'यह कैसे हुआ' और जवाब देते जाओ 'गुरु कृपा से ऐसा हुआ'। रास्ता सुगम हो जायेगा।

***

- मन दुनियाँ का रसिया है और दुनियाँ की चीज़ों में आनन्द पाता है। उसका कुदरती स्वभाव दुनियाँ के विषयों की तरफ़ है और उसी तरफ़ मनुष्य को ले जाता है। जब आत्मा अपने निजी आनन्द को भूलकर अज्ञानवश विषयों में आनन्द समझने लगती है तो अपने आपको और अपने प्रीतम परमात्मा को भूल जाती है और आवागमन के चक्कर में फँस जाती है। एक साथ मन दुनियाँ के विषयों को नहीं छोड़ता और उस तरफ़ ले ही जाता है लेकिन अगर उसमें आत्मा आनन्द न ले और अपने परमात्मा की तरफ़ फिर जाय, या स्वयँ उसको अपना अनुभव हो जाय तो फिर दुनियाँ के विषयों में उसको आनन्द नहीं आता और उनसे तृप्ति हो जाती है। आहिस्ता-आहिस्ता मन भी उन विषयों को छोड़ देता है।

***

- परमात्मा के दो रूप हैं। एक जो घट-घट वासी है और दूसरा रूप उसका स्थूल है जो गुरु है। शुरु-शुरु में स्थूल रूप से सम्बन्ध जोड़ा जाता है। फिर आहिस्ता-आहिस्ता कारण रूप परमात्मा से सम्बन्ध हो जाता है और इस तरह आसानी से अभ्यासी बहुत जल्दी परमात्मा के प्रेम का पात्र बन जाता है। परमात्मा का प्रेम आते ही बुराईयाँ दूर होने लगती हैं और अन्त में सिवाय उसके प्रेम के और कुछ नहीं रहता। यही मोक्ष और मुक्ति है।

***

- कोशिश करते रहने पर भी, परमात्मा का ध्यान करते रहने पर भी, अगर कोई बुरा काम हो जाता है तो समझ लो कि पहले कर्मों का फल है। इससे घबराओ नहीं।

***

- गुरुजन हाथ पकड़ कर छोड़ा नहीं करते।

दो पत्ते

बहुत समय पहले की बात है गंगा नदी के किनारे पीपल का एक पेड़ था. पहाड़ों से उतरती गंगा पूरे वेग से बह रही थी कि अचानक पेड़ से दो पत्ते नदी में आ गिरे।

एक पत्ता आड़ा गिरा और एक सीधा।

जो आड़ा गिरा वह अड़ गया, कहने लगा, "आज चाहे जो हो जाए मैं इस नदी को रोक कर ही रहूँगा, चाहे मेरी जान ही क्यों न चली जाए मैं इसे आगे नहीं बढ़ने दूंगा।"

वह जोर–जोर से चिल्लाने लगा ''रुक जा गंगा, अब तू और आगे नहीं बढ़ सकती''। मैं तुझे यहीं रोक दूँगा!

पर नदी तो बढ़ती ही जा रही थी, उसे तो पता भी नहीं था कि कोई पत्ता उसे रोकने की कोशिश कर रहा है। पर पत्ते की तो जान पर बन आई थी..वो लगातार संघर्ष कर रहा था, नहीं जानता था कि बिना लड़े भी वहीं पहुँचेगा जहाँ लड़कर, थककर, हारकर पहुँचेगा! पर अब और तब के बीच का समय उसकी पीड़ा का, उसके संताप का काल बन जाएगा। वहीं दूसरा पत्ता जो सीधा गिरा था, वह तो नदी के प्रवाह के साथ ही बड़े मजे से बहता चला जा रहा था।

"चल गंगा, आज मैं तुझे तेरे गंतव्य तक पहुंचा के ही दम लूँगा, चाहे जो हो जाए मैं तेरे मार्ग में कोई अवरोध नहीं आने दूंगा। तुझे सागर तक पहुँचा ही दूंगा।"

नदी को इस पत्ते का भी कुछ पता नहीं, वह तो अपनी ही धुन में सागर की ओर बढती जा रही है। पर पत्ता तो आनंदित है, वह तो यही समझ रहा है कि वही नदी को अपने साथ बहाए ले जा रहा है। आड़े पत्ते की तरह सीधा पत्ता भी नहीं जानता था कि चाहे वो नदी का साथ दे या नहीं नदी तो वहीं पहुँचेगी जहाँ उसे पहुंचना है! पर अब और तब के बीच का समय उसके सुख का, उसके आनंद का काल बन जाएगा।

जो पत्ता नदी से लड़ रहा है, उसे रोक रहा है, उसकी जीत का कोई उपाय संभव नहीं है और जो पत्ता नदी को बहाए जा रहा है उसकी हार का कोई उपाय नहीं है।

शिक्षा

''व्यक्ति ब्रह्म की इच्छा के अतिरिक्त कुछ कभी कर नहीं पाता है, लेकिन लड़ सकता है, इतनी स्वतंत्रता है। और लड़कर अपने को चिंतित कर सकता है, इतनी स्वतंत्रता है, इतना फ्रीडम है।''

इस फ्रीडम का प्रयोग आप सर्वशक्तिमान की इच्छा से लड़ने में कर सकते हैं और तब जीवन उस आड़े पत्ते के जीवन की तरह दु:ख और संताप के अलावा और कुछ नहीं होगा, या फिर आप उस फ्रीडम को ईश्वर के प्रति समर्पण बना सकते हैं और सीधे पत्ते की तरह आनंद विभोर हो सकते हैं।

प्रवचन परमसंत डॉ. करतार सिंह जी साहब

जैसा हम कर्म करते हैं वैसा उसका फल मिलता है। ...यह कर्मो का चक्र कब खत्म होगा?

जैसा हम कर्म करते हैं वैसा उसका फल मिलता है। परंतु यह कर्मो का चक्र कब खतम होगा। संतों-गुरुजनों ने इसके लिए कुछ साधन बताए हैं जिन पर चल कर मनुष्य कर्म-फल या कर्म-चक्र के प्रभाव से मुक्त हो सकता है। सारी मानसिक बीमारियों का कारण मनुष्य खुद ही है। उसमे जो कर्ताभाव है वही सब मानसिक बीमारियों का कारण है। हम जो कुछ करते हैं उसमें सोचते हैं कि ''मैं ही कर्ता हूँ''। यदि किसी काम का फल अच्छा हो जाता है तो बड़े ही प्रफुल्लित होते और बखानते हैं देखिए साहब, यह काम मैंने किया है, मेरी बुद्धि कितनी तीव्र है, मैं कितना चतुर हूँ, मेरे ही किए यह सब हुआ है। और यदि किसी काम का फल बुरा हो जाए तो मनुष्य चिंतित हो जाता है, मन में दु:ख मानता है। दोनो तरफ से मनुष्य अपने चित्त को मलिन कर लेता है। तो हमारे मन में जब तक कर्ताभाव रहेगा, भोक्ता-भाव रहेगा तब तक कर्मों का चक्र चलता ही रहेगा और हम भवसागर से कभी भी पार नहीं उतर पाएंगे। मुक्त नहीं होंगें स्वतंत्र नहीं होंगे। मनुष्य की पाँच इंद्रियाँ और छठा मन, ये सब ही बड़े प्रबल होते हैं। सारे मिलकर उसे इस प्रकार जकड़ लेते हैं कि वह युग युगांतर से कोशिश करता है, अभ्यास करता है कि किसी तरह वह इन इंद्रियों से मुक्त हो जाए, उनके वशीभूत न हो। परंतु यह सहज हो नहीं पाता। आप सब भीतर में स्वनिरीक्षण करिये और विचार करिए कि आप अपनी इंद्रियों से कितने मुक्त हैं। आपकी इंद्रियाँ और मन आपके कितने वश में हैं। गीता के अंत में भगवान अर्जुन से कहते हैं कि कर्मयोग छोड़ो, ज्ञानयोग छोड़ो, भक्तियोग भी छोड़ो, सब तरह की साधनाएं छोड़ो। केवल तू अपने आप को मेरे समर्पण कर दें। समर्पण बड़ा कठिन है। जो दीन होते हैं, जो संत होते हैं, जो भक्त होते हैं, उनका हृदय बड़ा कोमल होता है। वे प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभु! हमें अपने चरणों में ले लो। हमारे पास कोई भी बल नहीं है, हम तो निर्बल हैं। यही दीनता है। इन्सान के पास सब कुछ होते हुए भी यदि वह निर्बल रहता है यानी सिवाय ईश्वर के अपने किसी भी प्रकार के बल पर भरोसा नहीं करता, वही सबसे

बलवान है ..जो इस प्रकार निर्बल हो कर भगवान के चरणों में गिरते हैं, गिड़गिड़ाते हैं और प्रार्थना करते हैं, भगवान उन्हीं की प्रार्थना सुनते हैं। यही उनका विरद है। यह सरल साधन है। यदि हम अपने चित्त को निर्मल करना चाहते हैं तो मानसिक तौर पर भगवान के चरणों में बैठ कर रोयें। उनको पुकारें कि हे भगवान! हमें अपना दामन पकड़ा दीजिये, हम इस भवसागर में डूब रहे हैं।

एक सामान्य व्यक्ति को क्या करना चाहिए। उसको कौन सी जीवन की कला अपनानी चाहिए? हमारी मानसिक बीमरियों का कारण हमारा मन यानी उसका कर्तापन है। उससे कैसे मुक्त हों। महर्षि वशिष्ठ जी ने अपने वशिष्ठ योग में 4 मुख्य बातें बतलाई हैं (1) सत्, (2) संतोष, (3) विचार, और (4) शांति। हमें इन्हें केवल पढ़ना ही नहीं चाहिये, उन पर मनन करके उन्हें अपने जीवन में उतारने की कोशिश करनी चाहिये।

(1) सत्– ईश्वर सत् स्वरूप है। मनुष्य के भीतर भी जो आत्मा बैठी हुई है वह भी सत् स्वरुप है। उसको पहचानो और अपने आप को पहचानो। यह मत समझो कि तुम शरीर हो। आत्मा के ऊपर अन्य चार आवरण हैं, वह तुम नहीं हो। तुम तो सत् स्वरूप हो। तुम्हारा जीवन सत्यता का होना चाहिए। जो आत्मा के गुण हैं, परमात्मा के गुण हैं वे हमारे व्यवहार में होने चाहिये। साधन तो यही है कि हम आत्मा हैं, इस आत्मा को पहचान कर संसार में रहें और अपना नित्य का व्यवहार करें। आत्मस्थित हो कर जो कार्य हमारे द्वारा होगा उसका प्रभाव हमारे चित्त पर नहीं पड़ेगा, हमारा चित्त निर्मल रहेगा और कर्मफल नहीं बनेगा। हमारा व्यवहार सत्यता का होना चाहिये। परमार्थ के रास्ते में चलने वाले को निरंतर सत्य ही बोलना होगा चाहे कितनी ही हानि क्यों न हो जाए, जब तक हमारा ऐसा स्वभाव नहीं बन जाता तब तक हम अपने रास्ते पर सफल नहीं होंगे।

(2) संतोष– संतोष वही कर सकता है जिसके भीतर में सहनशीलता और ज्ञान है। हमारी यह धारणा बन जाए कि जो आत्मा हमारे अन्दर है वही अन्य मनुष्यों में है और सारे संसार के जीव–जंतु, स्थावर जंगम सब में है। तब यदि कोई हमसे दुर्व्यवहार करता है, हमें उत्तेजना देता है तो वह कौन करता है। वह तो प्रभु की लीला है, ऐसा हमें समझना चाहिए। जब हमारा ज्ञान ख़्रढ़ हो जाता है तो सहनशीलता स्वत: ही आ जाती है और संतोष अप्रयास ही बनने लगता है। शुरु में संतोष का मतलब यह लिया

जाता है कि हमें भगवान ने जो कुछ दिया है उसमें संतुष्ट रहें। परंतु सन्तोष का विस्तार करना चाहिये। कैसे भी परिस्थिति आ जाए उसमें हमारा मन विचलित न हो।

(3 और 4) विचार और शांति– तीसरा उपदेश जो दिया वह विचार का है– आत्मविचार। यह पहचानो कि किसको वैराग हो रहा है, कौन वैराग कर रहा है? उत्तर होगा कि मेरे मन में वैराग हो रहा है। परंतु तुम तो मन नहीं हो। मन से मुक्त होकर ज्ञान को अपनाओ। तुम तो आत्मा हो– ज्ञान और अज्ञान, वैराग और अनुराग दोनों से मुक्त। जब यह स्थिति आ जाती है तो उसका परिणाम क्या होता है? परम शांति, तृप्ति, आत्मशांति। ऐसी शांति जिसके साथ पूर्ण तृप्ति हो, कोई इच्छा न हो, कोई आशा न हो। जिस परिस्थिति में रहें शांत रहें। यह आत्मा का स्वरूप है। मन की शांति अस्थायी है। आत्मा की शान्ति तो निरंतर रहती है गंगा के प्रवाह की तरह। यह चार बातें महर्षि वशिष्ट ने भगवान राम को बतलाईं तब भगवान ने अपने असली (आत्मा के) शरीर को पहचान कर अपनी लीलाएं कीं। इसी तरह परमार्थ के रास्ते पर चलने वाले साधक जिज्ञासु को भी कुछ साधना ज्ञान की करनी पड़ेगी जो भी कर्म हम करें उसमें हमारा ममत्व न हो ..गीता में भगवान कृष्ण ने भी अर्जुन को यही सिखाया था कि जो कुछ भी कर्म तू करे उसके साथ तेरा कोई बन्धन न हो।

यदि बंधन हुआ, अज्ञान अहंकार हुआ तो कर्मफल मिलेगा। उन कर्मों की छाया चित्त पर पड़ेगी जिसके परिणामस्वरूप जन्म मरण के चक्कर में पड़ोगे। अर्जुन चाहता है की वह कर्म बंधन से मुक्त हो जाए, स्वतंत्र हो जाए। जितनी इंद्रियाँ हैं, मन है वे बुद्धि के आधीन हो जाएं और बुद्धि आत्मा से प्रकाश ले। चित्त में एक सन्तुलन हो, ध्वनि हो, संगति हो। ऐसी परिस्थिति में जो भी कर्म किया जाएगा वह इस ज्ञान के साथ किया जाएगा कि मैं तो कर्ता नहीं हूँ, मैं तो निर्लेप आत्मा हूँ। ईश्वर ही कर्ता है। ऐसा दृढ़ विचार जब बन जाएगा तो कर्मों की छाया चित्त पर नहीं पड़ेगी और हम स्वतंत्र हो जाएंगे।

हम जितनी भी साधना करते हैं, चाहें ब्रह्म रन्द्र पर करें, आज्ञा चक्र पर करें, हृदय चक्र पर करें या नाभि चक्र पर करें, यह एक टैक्नीक (अभ्यास) है मन को शांत करने का। यह जीवन का अंतिम लक्ष्य नहीं है। हम लोग आंखे बंद करके आंतरिक साधना पर ज़्यादा जोर देते हैं। साधना जरूर करनी चाहिये, इसका अपना परिणाम है। परंतु जब तक हमारा व्यवहार शुद्ध नहीं होता, ईश्वरमयी नहीं होता तब तक यह एक

टैक्निक, साधन या अभ्यास ही है। हमें देखना है कि अभ्यास करते-करते एकाग्रता होने लगी, मन ठहरने लगा परंतु उसके नाम और स्वरुप का ध्यान करने से हमारा चित्त भी शुद्ध हुआ या नहीं। हमारा मन निर्मल होना चाहिए। क्या हमारा चित्त निर्मल और विचारशून्य है। हमारी साधना का परिणाम यह होना चाहिए कि हमारा चित्त पूर्ण निर्मल हो जाए उस पर एक भी दाग न रहे। कर्म तो हमें करना ही है परंतु कर्म करने की यह कला होनी चाहिए कि उसके साथ हमारा बन्धन न रहे।

अपना आत्म-निरीक्षण करते रहना चाहिए कि कौन-कौन सी त्रुटियाँ हम में हैं। यदि साधना करते-करते हमारा चित्त शुद्ध और निर्मल नहीं होता तो समझिए कि साधना में बड़ी कमी है। हम कितने ही पढ़ जाएं, कितने ही आत्म-प्रगत हो जाएं, हमें हमेशा दीन रहना चाहिए। संत भीतर से प्रकाश रूप, आनंद स्वरूप, जीवन स्वरूप होते हैं परन्तु ईश्वर के, अपने इष्टदेव के चरणों में हमेशा अपने आप को छोटा नन्हा तृण समझते हैं। छोटे बालक जैसी सरलता तब आती है जब हम राग-द्वेष से रहित हो जाएं। कबीर साहब कहते हैं- ''मरने से ही पाईये, पूरण परमानन्द'', मरने का मतलब यह है कि भीतर में तनिक भी अहंकार न रहे- मेरापन न रहे। 'तू ही तू' रटते हुए उस परमोच्च स्थिति में पहुँच जाएँ जहाँ के वर्णन करने के लिए शब्द नहीं होते। वह स्थिति हमारे रोम-रोम में बस जाए। वो राम हमारे जीवन में प्रकट हों, विकसित हों, प्रकाशित हों, तो समझें कि साधना में कुछ प्राप्ति हुई है। हमेशा स्वनिरीक्षण करते रहना चाहिए। जो भी त्रुटियाँ आप देखें, उनसे निवृत्त होना चाहिए, उन्हें दूर करना चाहिए। यदि आपसे स्वयं ऐसा नहीं हो पाता तो जिससे आपने दीक्षा ली है, जिसको गुरु बनाया है, उनके चरणों में जाकर प्रार्थना करनी चाहिए, उनसे सहायता के लिए निवेदन करना चाहिए। अपने आप को भीतर से साफ करते चले जाएं निर्मल-निर्मल से भी निर्मल।

मानव मन की विकृतियाँ, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार ही मंदिर और भगवान के बीच पर्दा हैं। जब तक इन बुराईयों का पर्दा नहीं हट जाता, तब तक मंदिर में पहुँचने के बाबजूद भी हम भगवान से कोसों दूर होते हैं। मंदिर तक पहुँचना तन का विषय है और भगवान तक पहुँचना मन का।

वसंत भण्डारे पर आचार्य जी (ब्रह्मलीन परमसन्त डॉ. करतार सिंह जी) का विशेष सन्देश

पूज्य श्री लालाजी साहिब ने अपने एक पत्र (अमृत रस, पृष्ठ 22) में भण्डारे के विषय में लिखा है कि, ''सालाना भण्डारे की हकीकत एक मुजाहिरा है जिसमें लोग एक दूसरे से ख्यालात (विचारों का) का तबादला करते हैं और आइन्दा तरक्की का जरिया सोच लेते हैं।''

आर्थिक तथा कुछ अन्य कठिनाईयों के कारण सत्संगी भाई-बहिन बहुधा भण्डारे के अवसर पर पहुँच नहीं पाते और सत्संग के लाभ से वंचित हो जाते हैं। इसलिए आने वाले भण्डारे के अवसर पर पहुँचने और उससे पूरा लाभ उठाने का पहले से ही प्रयत्न करना चाहिए।

प्रत्येक व्यक्ति के अन्तस् में कई प्रकार की दुविधायें होती हैं जिन्हें वह दूर करना चाहता है. वर्ष भर इन्हीं दुविधाओं के कारण चिन्तित रहता है। भण्डारे में सम्मिलित होने के लिए वह घर से यह सोचकर प्रस्थान करता है कि वहाँ जाकर वह अपनी सभी दुविधाओं को (पूज्य गुरुदेव के सम्मुख) प्रस्तुत करेगा। किन्तु समयाभाव के कारण वह ऐसा नहीं कर पाता है। इसके अतिरिक्त वह अपनी कमियों तथा त्रुटियों को बताने में संकोच करता है। दुविधा वैसी की वैसी पड़ी रह जाती है जिसके कारण इस अवसर का पूरा लाभ जो होना चाहिए नहीं होता है।

श्री गुरुदेव प्राय: यह कहा करते थे कि जिज्ञासुओं ने जिन बुराइयों से मुक्त होने के लिए श्री पूज्य लाला जी साहब से प्रार्थना की, वे समय पाकर छूट गयीं किन्तु जिन बुराइयों को उनके सम्मुख प्रस्तुत नहीं किया गया, वे अन्त समय तक जैसी की तैसी बनी रहीं।

कहने का भाव यह है कि जिन भाई-बहनों को कुछ पूछना हो वह भण्डारे से पहले उसे लिख दें। ऐसा करने से समागम के अवसर पर समय कम लगेगा और लाभ अधिक होगा।

पूज्य गुरुदेव ने अपने पंच भौतिक नश्वर शरीर का त्याग करने से कुछ दिन पूर्व सेवक को कई बार कहा कि हम लोगों का आचरण दिन-प्रतिदिन गिरता जा रहा है। यह उनके दु:ख का कारण बना रहता था। उनका हुक्म था कि निम्नलिखित बातों का सख्ती से पालन करना चाहिए :

1. प्रत्येक सत्संगी को चाहिए कि वह पर–स्त्री का संग न करे. बहनों के लिए भी यह उचित है कि अन्य पुरुष के साथ बात चीत उस समय करें जब उसका पति साथ हो।
2. भोजन शाकाहारी एवं शुद्ध होना चाहिए. माँस एवं मदिरा का सेवन करने वाले सत्संगियों को इन बुरी आदतों का तुरन्त त्याग कर देना चाहिए।
3. अनुचित ढंग से यानी घूंस द्वारा रुपया नहीं कमाना चाहिए, इत्यादि।

गुरु महाराज फरमाया करते थे कि प्रत्येक साधक को अपना निरीक्षण करके यह देखना चाहिए कि मुझ अपने में क्या कमी या त्रुटियाँ है। एक–एक करके उनसे मुक्त होने का प्रयास करना चाहिए. तीर्थ स्थानों में जाकर लोग कुछ वस्तुओं का त्याग कर देते हैं। गुरु महाराज इसे उत्तम बताया करते थे। इसी प्रकार प्रति वर्ष जब साधक भण्डारे में आयें तो अपनी एक कमी को दूर करें। पहले साधारण बुराइयों को छोड़ने का प्रयास करें, परन्तु पूरी दृढ़ता के साथ।

सेवक का सभी भाई–बहनों से करबद्ध अनुरोध है कि भण्डारे के दिनों में ईश्वर–चिन्तन के अतिरिक्त सभी बातों से दूर रहें। जहाँ तक हो सके मौन रहें। कम से कम बात करें। यदि बात करें तो भगवत–चर्चा एवं अध्यात्म सम्बन्धी। राजनीतिक बातों को तीन चार दिन के लिए बिलकुल भूल जाएँ। किसी प्रकार की चंचलता समीप न आने पाये तथा परिवार से जितना अलग रह सकें, रहें।

प्रसाद लेते समय शोर न करें। जो महोदय प्रसाद वितरित करें वे गुरुदेव में लय होकर ऐसा करें। प्रसाद लेते एवं सेवन करते समय गुरुदेव के दिव्य रूप की स्मृति करें। जो भाई बहन ऐसा नहीं करते उन्हें प्रसाद के महत्व का सम्भवत: ज्ञान नहीं है। इसी कारण उनको उचित लाभ नहीं होता। यदि विश्वास और श्रद्धा हो तो इस प्रसाद को यथा योग्य विधि से सेवन करने से सभी प्रकार के मानसिक एवं शारीरिक रोगों से निवृति प्राप्त हो सकती है।

प्रत्येक सत्संगी को भण्डारे के काम में उत्साहपूर्वक भाग लेना तथा सहयोग देना चाहिए।

गुरुदेव आप सबका कल्याण करें।

– डॉ. करतार सिंह

(स्वर्णजयंती विशेषांक – जनवरी–फरवरी, 2004)

गुरु पूर्णिमा के अवसर पर विशेष प्रवचन

गुरु या प्रभु की सच्ची पूजा शिष्य का समर्पण-अनुपालन

संसार के देशों में ऐसा कोई धर्म-सम्प्रदाय नहीं जहाँ गुरु की महानता और महत्त्व के प्रति गुरु पूर्णिमा या व्यास पूजा जैसा सुन्दर पर्व मनाने की प्रथा हो। हमारे यहाँ यह दिन जीवन के परम लक्ष्य की ओर ले जाने वाले पूज्यतम मार्गदर्शक अर्थात् गुरु की विशेष पूजा का अवसर प्रदान करता है। गुरु तो अपने शिष्यों की हर प्रकार सेवा करने के कारण पूज्य और कृतज्ञता के अधिकारी सदैव ही होते हैं। परन्तु इस शुभ दिन प्रत्येक शिष्य साधक का विशेष प्रयास होता है कि वह अपनी प्रगाढ़ श्रद्धा को अपने सद्गुरु के प्रति आभार स्वरूप प्रकट करे। गुरु भी विशेष कृपा-उदारता पूर्वक अपने प्रिय शिष्यों पर भगवत-प्रसादी की अमृत वर्षा करते हैं।

ये जो पुष्प या पुष्पहार भेंट किए जाते हैं इनमें वास्तव में साधक का अहंकार समर्पित होना चाहिए। दीक्षा के समय यों तो सभी साधक अपना तन-मन-धन गुरुदेव के चरणों में अर्पित कर देने का वचन देते हैं, परन्तु वास्तव में हम स्वनिरीक्षण करके देखें कि हम उनको क्या दे पाते हैं। तन और धन की भेंट तो सच्चे सद्गुरु चाहते ही नहीं। यदि शिष्यों की खुशी के लिए कुछ स्वीकार करते भी हैं तो वह नाम मात्र ही लेते हैं। वह तो मन की अर्थात् अहंभाव की भेंट लेना चाहते हैं जिससे शिष्य का उद्धार हो जाए।

इसी प्रकार हम उनके प्रति सम्मान प्रगट करने के लिए उनका चरणस्पर्श भी करते हैं। गुरुवाणी का एक बड़ा सुंदर भजन है। यदि जीवन का लक्ष्य प्राप्त करना है तो गुरु के चरणों को छुओ। गुरु के चरण केवल शरीर के चरण नहीं हैं (लाभ इनसे भी होता है) किन्तु जो गुरुवाणी में संकेत हैं उसके अर्थ ये हैं कि उनके आत्मिक गुणों को अपने रोम-रोम में रमा लो, अपने भीतर में गुरु के सच्चे स्वरूप को बसा लो। जब तक उनके आत्मिक गुणों को नहीं अपनायेंगे और अपने अनात्मिक अवगुणों को नहीं त्यागेंगे तब तक विशेष आध्यात्मिक प्रगति नहीं होगी।

गुरु जो कि ईश्वर का प्रतिनिधि स्वरुप है, उसके चरणों में माथा टेकने का सही

मतलब यही है कि सबसे पहले हम अपने अहंकार को, अपनी बुराइयों को उनके चरणों में अर्पण कर दें। उनके सद्–वचनों की प्रसादी लें, उनकी निर्मलता लें, उनके गुणों को अपनाएं और वैसे ही हम हो जायें। वास्तव में वैसे तो हम हैं भी, पर अहंकार के कारण हम समझते हैं कि हम शरीर हैं, हम मन हैं या बुद्धि हैं। कोई समझता है कि मेरी बुद्धि तीव्र है, मैं तो अपनी बुद्धि के चातुर्य से दूसरों को प्रभावित कर लेता हूँ। ये मन की बातें रास्ते की रुकावटें हैं, अहंकार को पोषित करती हैं। अहंकार कम करने का सबसे सरल तरीका है दीनता अपनाना। दीनता है इस अहं भावना को छोड़ना। दीनता यह नहीं कि किसी को प्रभावित करने के लिए या उससे काम निकालने के लिए दो–चार मीठी–मीठी बातें कर ली। यह सूक्ष्म अहंकार है। असली दीनता अपनाना और अहंकार त्यागना यह है कि हमारी आत्मा के ऊपर जो आवरण पड़े हुए हैं, जो आपके बंधन है, उनसे मुक्त होना दीनता है। दीनता है अपने पृथक अस्तित्व का त्याग कर देना। अपनी आत्मा को परमात्मा में मिला देना। परमात्मा और हमारी जीवात्मा एक है।

आत्मा के ऊपर आवरण चढ़े हैं जिसके परिणामस्वरुप हम अपने वास्तविक स्वरूप को नहीं देख पाते हैं। साधना करने का मतलब यही है कि कोई भी पद्धति अपनाएं उसका परिणाम होना चाहिए कि हमारी आत्मा के ऊपर जो आवरण पड़े हुए हैं इनसे हम इसी जीवन में मुक्त हो जाएं। यही मुक्ति है। जिसको इन आवरणों से मुक्ति जीते जी नहीं मिली, जिसने जीते जी अपने निर्वाण यानी जीवन मुक्त होने की अनुभूति नही की है, वे यह चाहें कि उनको शरीर छोड़ने के बाद मुक्ति मिल जायेगी, सो यह तो संभव नहीं है–अपने आप को भ्रम में रखना है।

हमारे जीवन को हर समय प्रभावित करने वाले दो शब्द हैं– स्तुति और निन्दा। स्तुति करनी है तो परमपिता परमात्मा की करो, उसके एक प्रकट स्वरूप संत सद्गुरु की करो और निन्दा करनी है तो अपने आप की करो। दैनिक व्यवहार में अपने विचारों को देखिए। हम प्रति क्षण दूसरों की निन्दा करते रहते हैं। ऐसा व्यक्ति यदि चाहे कि वो परमार्थ में सफल हो जाए, तो ये अपने आपको धोखा देना है। सत्संग में भी भाई आते हैं, कहते हैं हमें 20–25 साल हो गए पर अब तक हमें प्राप्ति क्या हुई? इसी प्रकार का एक भाई का पत्र मिला। मैंने उनसे पूछा तुमने 25 साल में क्या सद्गुण सीखे और दोष कौन सा छोड़ा। और वह मौन। अपना स्वनिरीक्षण करो। हम दूसरों के दोष देखते हैं, अपना दोष कोई नहीं देखता। हमारे यहाँ की साधना की विशेष बात

यही है हम अपनी स्वयं की दशा का निष्पक्ष निरीक्षण करें, स्वयँ के दोष देखें और उनका त्याग करें।

हम सत्संग में आकर सत्संगी तो कहलाते हैं परंतु गुरु महाराज की बातों का अनुसरण तो दूर की बात है, उन पर मनन भी गम्भीरता से नहीं करते हैं। शिष्यों को यदि गुरु में पूरी आस्था न हो तो उनकी संगति न करें। पर जिस धर्मगुरु पर विश्वास है उसके अनुसार चलिए। उसके अनुसार चलना ही उस महापुरुष के चरणों में पुष्प चढ़ाना है, अपने शीश को रखना है। हम चरण छूकर शरण में होने का बाहरी दिखावा करते हैं। इससे बेहतर है कि ऐसा दिखावा न करें।

हम स्तुतिगान करें- ईश्वर का, ईश्वर के प्रकट रूप का गुणगान खूब करें पर इसके साथ-साथ अपने अवगुणों को भी देखते चलें। पूज्य लालाजी महाराज का कथन था कि- दो रास्ते हैं एक ज्ञान का, दूसरा प्रेम साधना का। वह एक बड़ी सुंदर मिसाल दिया करते थे- दो चादरें बिछी हैं काँटों पर। एक रास्ता यह है कि अपने गलत आचरण अर्थात् अवगुणों की सारी चादर को एक झटके से तुरंत ही उठा दें। वो रास्ता है ज्ञान का जो कि सबके लिए सरल नहीं है। दूसरा रास्ता है कि चादर में से काँटो को एक-एक करके धीरे-धीरे निकालते जाएं। यह तरीका है भक्तों का जिसमें स्तुति करते हुए धीरे-धीरे अपनी जिन्दगी से अहंकार, दोषदर्शन, आलोचना और प्रतिक्रिया जैसे अवगुणों के कांटे निकाल फैंकें और आत्मा की 'चदरिया' को साफ कर लें।

सच्चा गुरुपूजन यही है की साधक की स्थिति जो ऐसी थी कि **''मैली चादर ओढ़ के कैसे पास तुम्हारे आऊँ?''** वह इतनी निर्मल हो जाए कि जब अंत समय आए तो वह भी ऐसा कुछ कहने योग्य हो जाए कि-**''दास कबीर जतन से ओढ़ी, ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया''**।

इस शुभ दिन हमें स्वयँ ऐसी गुरुपूजा करनी चाहिये (केवल औपचारिकता पूरी करने के लिए नहीं) कि हम गुरुदेव की कृपा को पाने के अधिकारी बनें। गुरु पूर्णिमा पर्व मनाने का पूरा और सच्चा लाभ उठा सकें। गुरु महाराज की दया आप सबको प्राप्त होती रहे-यही मेरी शुभ-कामना है।

गुरुदेव हमें शक्ति प्रदान करें।

अबुबकर सबली

तपस्वी अबूबकर सबली की जन्म भूमि बगदाद में थी। वे बड़े ज्ञानी और प्रेम में मस्त फकीर थे। उनके जीवन में कभी दुर्बलता और उदासीनता देखने में नहीं आई। उनकी प्रज्वलित प्रेमाग्नि कभी मंद नहीं हुई। अनेक शास्त्रों का अध्ययन करके उन्होंने बहुत से ग्रंथ रचे थे। मुसमर की भांति वे 'अनहलक' का जाप करने वाले थे। वे 77 वर्ष तक जीवित रहे और हिजरी 338 में स्वर्गवासी हुए।

मूर्खों ने उन्हें बहुत पीड़ित किया था। उनकी सारी जिन्दगी लोगों की तरफ से तकलीफ भोगने में बीती थी। उन्हें कत्ल करने की भी बहुत कोशिश की गई थी।

उनके जीवन का परिवर्तन आश्चर्यजनक रीति से हुआ था। बगदाद के खलीफा के मातहत नेहाउन्द प्रान्त के वे जागीरदार थे। खलीफ़ा का हुक्म पाकर वे राज दरबार में हाजिर हुये। किसी कारण से नाराज होकर खलीफा ने उनकी जागीर छीन ली। पदभ्रष्ट और अपमानित होकर वे नेहाउन्द लौट आये। कुछ समय के बाद खलीफ़ा ने उन्हें फिर जागीर बख़्श दी, तोहफ़े के तौर पर कुछ कपड़े भी भेजे। सबली ने उन बेशकीमती कपड़ों को देखकर नाक भौंह सिकोड़ लिए। खलीफ़ा तक यह बात पहुँची। उसने क्रुद्ध होकर जागीर फिर से छीन ली। सबली ने सोचा कि मनुष्यों के दिए कपड़ों की ओर ऐसा बेदरकारी दिखाने का ऐसा नतीजा हुआ तो उस परमात्मा के दिए इस शरीर का दुरुपयोग करने पर तो न जाने कितनी बड़ी सजा भोगनी होगी। वे खलीफ़ा के पास गये और बोले ''राजन! आप अपने दिए कपड़ों की बेदरकारी को नहीं सह सके, सबके मालिक उस परमात्मा ने मुझे बहुमूल्य प्रेम और तत्वज्ञान प्रदान किया है। मैं उसकी अवगणना करके अब किसी मनुष्य की गुलामी करूँगा?''

ऐसा कहकर वे वहाँ से चल दिये। तपस्वी खैय्यार नोस्साज के पास जाकर उन्होंने फकीरी की दीक्षा ली।

जुन्नेद खैय्यार के कुटुम्बी थे। खैय्यार के मन में उनके प्रति बहुत अधिक सम्मान था। उन्होंने सबली को जुन्नेद के पास भेजा। सबली ने जुन्नेद के पास जाकर कहा– ''आपके पास ईश्वर प्रेम का मोती है, कृपा करके वह मुझे दें। अगर उसे खैरात में

नहीं दे सकें तो मोल लेकर बेच दें।''

जुन्नेद बोले- ''मेरी धारणा है कि उस मोती को खरीदने की ताकत तुम्हारे में नहीं है। अगर मैं उसे खैरात में तुम्हें दे दूँगा तो तुम उसको संभाल कर नहीं रख सकोगे, खो बैठोगे। हिम्मत करके बहादुर की तरह साहस के सागर में कूद पड़ो और धैर्य व श्रद्धापूर्वक प्रयत्न करो तो शायद उस मोती को पालो।''

सबली ने पूछा- ''कहिए उसके लिए मुझे क्या करना होगा?

जुन्नेद ने कहा- ''जाओ, एक वर्ष तक गंधक बेचो।''

सबली उनके हुक्म के मुताबिक एक वर्ष तक गंधक बेचने का काम करते रहे। वर्ष के अन्त में जाकर उन्होंने फिर प्रश्न किया- ''अब क्या करूँ?''

''काम धंधो से हाथ खींचकर एक वर्ष तक घर-घर जाकर भीख माँगो'' जुन्नेद ने आज्ञा दी।

सबली ने आज्ञा का पालन किया, पर कोई भीख देता ही नहीं था। जुन्नेद के पास आकर उन्होंने अपना हाल कह सुनाया। जुन्नेद ने उन्हें समझाया- ''देखा भाई! लोग तुम्हारी तिलमात्र भी चिंता नहीं करते। इसलिए तुम्हें भी उसमें ज़रा भी आसक्ति नहीं रखनी चाहिए।'' बाद में वे बोले- ''अब तुम नेहाउन्द जाओ। तुमने अमीरी और हाकिमी भोगी है, उस समय तुमने जिस किसी के साथ जुल्म अथवा अनुचित व्यवहार किया था, उन सबसे जाकर क्षमा माँगो।''

गुरु की आज्ञा पाकर वे नहाउन्द गये और द्वार-द्वार पर भटक कर सबसे क्षमा माँगने लगे। किसी एक को उन्होंने पहले पीड़ित किया था, उसके घर पर न मिलने के कारण वे उससे क्षमा न माँग सके। उसका प्रायश्चित उन्होंने गरीबों को एक लाख ताँबे के सिक्के बाँटकर किया। चार वर्ष तक वे माफ़ी माँगते फिरते रहे। फिर भी जुन्नेद ने उनके अहंकार को पूरी तरह दूर नहीं हुआ देखकर उन्हें और भीख माँगने का आदेश दिया।

सबली ने स्वयं कहा- ''मैंने और एक वर्ष के लिए द्वार-द्वार टेककर भीख माँगी। भीख में जो कुछ मिल जाता गुरु के सामने उपस्थित करता और वे उसे गरीबों में बाँट देते। हर एक रात वे मुझे भूखा ही रखते। इस प्रकार एक वर्ष बीत जाने पर उन गुरु ने मुझे एक वर्ष तक धर्म-प्रेमी साथियों की सेवा करने का आदेश दिया।''

सबली ने गुरु के पास रहकर धर्म-बन्धु अनुयायियों की एक वर्ष तक सेवा की।

उसके बाद जुन्नेद ने उनसे प्रश्न किया- ''सबली! अब तुम्हें अपने जीवन का क्या मूल्य मालूम देता है?''

सबली- ''मैं अपने आपको सबसे अधम मानता हूँ और देखता हूँ।''

जुन्नेद- ''जाओ अब तुम्हें सच्चे ज्ञान की प्राप्ति हुई।''

सबली बच्चों को मीठे का और बड़े बूढ़ों को सोने चाँदी का लालच देकर उनसे 'अल्लाह-अल्लाह' कहलाते। कुछ समय के बाद उन्हें इसकी निरर्थकता मालूम हो गई और अब वे नंगी तलवार हाथ में लेकर कहने लगे कि जो कोई अल्लाह का नाम लेगा वे उसकी गर्दन काट देंगे।

किसी ने उनसे पूछा- ''जिस नाम के लिए आप आज तक मीठा, सोना, चाँदी बाँटते थे उसी नाम के लिए आज आप लोगों के सिर काटने के लिए तैयार है?''

सबली- ''मैं समझता था कि वे लोग सच्चे मन से अल्लाह का नाम लेते होंगे, पर वे तो अल्लाह का नाम लेते थे बेइज्जती और मज़ाक के साथ। ऐसे अपवित्र मनोभाव को मैं नहीं सह सकता।''

जिस किसी जगह ईश्वर का नाम सुनाई देता वहाँ वे सिर झुकाकर वंदना करते। एक दिन उन्हें अर्न्तध्वनि सुनाई दी- ''सबली! तू नाम का और कितने दिनों तक आशिक रहेगा? अब तो इस नाम वाले की खोज कर।''

यह सुनते ही उनके हृदय में प्रभु-प्रेम की तरंगें उछलने लगीं और वे बहुत ही व्याकुल होकर पास की नदी में कूद पड़े। परन्तु वे डूबे नहीं, नदी की ऊँची तरंगों ने उन्हें किनारे पर ला पहुँचाया। उसके बाद अपने प्यारे की विरह में वे एक बार धधकती अग्नि में जा गिरे। वहाँ भी ईश्वर की कृपा से उनका बचाव हुआ। इस प्रकार अनेक बार मौत का सामना करके भी वे मरे नहीं। ईश्वर ने उनके जीवन की रक्षा की। धीरे-धीरे उनकी व्याकुलता बढ़ती गई और वे पुकार-पुकार कर कहने लगे- ''अरे! जिसे अग्नि, पानी, पर्वत और हिंसक जीव भी नहीं मार सकते वह अब क्या करे?''

''जो मनुष्य प्रभु-प्रेम से घायल हुआ है उसे दूसरा कोई घायल नहीं कर सकता है''। किसी अज्ञातवाणी से उन्हें उत्तर मिला।

वे प्रभु-प्रेम में इतने पागल हो गये थे कि उन्हें साँकलों से बाँधकर रखना पड़ता था। वे किसी भी तरह शांत नहीं हो पाये तो पागलों के शफ़ाखाने में भेज दिए गये।

वे वहाँ कैदी की तरह रखे गये और लोग सबली के पागलपन की चर्चा करने लगे। पर सबली कहते- ''हाँ, तुम लोगों की नज़र में मैं और मेरी नज़र में तुम लोग पागल हो। मैं तो चाहता हूँ कि ईश्वर मेरे इस पागलपन को बढ़ाता ही रहे।''

एक दिन दोनों छोरों पर जलती हुई लकड़ी हाथ में लेकर उन्होंने कहा- ''एक तरफ स्वर्ग तथा दूसरी तरफ नरक प्रज्जवलित है। इसलिए लोग स्वर्ग के लोभ में और नरक के भय से ईश्वर की सकाम भक्ति करते हैं। इस सकाम भक्ति को छोड़कर निष्काम भक्ति करना सीखना चाहिए।''

एक दिन जुन्नेद के साथी सबली की बढ़ाई सबली के सामने ही करने लगे। उन्होंने कहा- ''सबली के समान सत्यनिष्ठ, प्रभु प्रेमी और उच्च आशय वाले महात्मा इस दुनिया में मिलने मुश्किल हैं।''

जुन्नेद ने इसका विरोध करते हुए कहा- ''यह तुम्हारी भूल है। तुम जो बढ़ाई कर रहे हो वह ठीक नहीं है।'' इतना कहकर उन्होंने किसी बहाने से सबली को वहाँ से बाहर भेज दिया और फिर कहा ''तुम बढ़ाई करके सबली को घायल कर रहे थे। इन घावों से वह कहीं मर ही न जाये, इसलिए मैंने उसे बाहर भेजकर बचाया है।''

साधना के लिए सबली एक खाई में जा बैठते थे और हाथ में लकड़ी रखते थे। साधना करते-करते यदि आलस्य आ घेरता तो लकड़ी से वे अपने शरीर को पीटते। कभी-कभी तो वे अपने आपको इतना पीटते कि लकड़ी ही टूट जाती। तब वे हाथ पाँव पीटने लग जाते।

एक दिन सबली ने नया कपड़ा पहना पर थोड़ी ही देर में उसे उतारकर जला डाला। लोगों ने तर्क किया कि सम्पत्ति का नाश करना शास्त्र में निषिद्ध है।

सबली बोले- ''ईश्वर का कहना है, यदि तेरा मन मुझे छोड़कर दूसरी चीज़ पर आसक्त होगा तो मैं तुझे उस चीज के साथ ही अग्नि में जला डालूँगा। मेरे मन में इस कपड़े का मोह हो गया था, उसी से दुखित होकर मैंने इस कपड़े को जला डाला है।''

उन्नत जीवन का लाभ पाकर सबली उपदेश देने और उत्तम तत्वों का प्रचार करने लगे। हर एक बात का रहस्य साधारण लोगों को सुनाने का जुन्नेद ने विरोध किया। इस पर सबली बोले- ''बोलने वाला मैं हूँ और सुनने वाला भी मेरे सिवाय दूसरा कौन है? जो कुछ बोला और सुना जाता है वह सब ईश्वर की ओर ही से तो आता

है। सभी कुछ उस ईश्वर में से आता है और उसी में चला जाता है। उसके बीच में सबली क्या चीज़ है?''

यह सुनकर जुन्नेद बोले- ''ऐसा है तो तुम्हारे लिए सर्वसाधारण को उपदेश देना उचित ही है।''

एक दिन सबली सभा में बार-बार 'अल्लाह-अल्लाह' का उच्चारण कर रहे थे। इतने में एक फकीर पूछ बैठा- ''ला इल्लाह इलिल्ला' क्यों नहीं बोलते?'' सबली ने उत्तर दिया- ''मुझे डर मालूम होता है कि 'ला' का उच्चारण करने के बाद अल्लाह के नाम तक पहुँचने के पहले ही कहीं मेरे प्राण न निकल जायें। इस क्षणभंगुर शरीर का भरोसा ही क्या?''

इस बात का उस फकीर पर ऐसा असर पड़ा कि तुरन्त कँपकँपी आकर उसके प्राण निकल गये। फकीर के सगे सम्बन्धी दौड़े आये और नाराज होकर सबली को पकड़कर इन्साफ़ कराने ले चले। सबली अपनी भावना में मस्त थे। उसी हालत में वे न्यायाधीश के सामने लाये गये। फकीर के सम्बन्धियों ने सबली पर हत्या का आरोप लगाया।

न्यायाधीश ने सबली से पूछा- ''तुम्हें कुछ कहना है।''

सबली बोले- ''एक प्राण था वह परमेश्वर के दर्शन की बाट देखता-देखता, अन्त में प्रेम की धधकती अग्नि में कूद पड़ा। मनुष्य जीवन के गुण दोषों और इस दुनिया के सम्बन्धों से मुक्त हो गया है। उस पर ईश्वर की उस सुन्दर वाणी की बिजली पड़ते ही प्रकाश फैला, देह पिंजर जल उठा और उसके प्राण पखेरू उड़ गये। सबली का इसमें क्या अपराध।''

न्यायाधीश- ''सबली को यहाँ से जल्दी हटाओ। उसकी बातों से मेरे मनोभावों में और मेरी हालत में बहुत उलट-पलट होने लगी है। मुझे डर है कि कहीं मैं भी बेहोश न हो जाऊँ।''

जो कोई सबली के पास आकर उनसे अपने जीवन को सुधारने और धर्म मार्ग पर चलने की तरकीब पूछता उससे वे कहते- ''ईश्वर का सम्पूर्ण विश्वास करके जंगलों में भटको। खाली हाथ मक्का की ओर चले जाओ और वहाँ से लौटकर तब मेरे साथ रहने के लिए आना। इस प्रकार उपदेश देकर उन्होंने अपने बहुत से शिष्यों को जंगलों में भेज दिया था। इस पर किसी ने उनसे पूछा- महात्मन्! आप ऐसा करके

तो उनकी जान जोखिम ही में डालते हैं।

सबली– ''नहीं, यह बात नहीं है। कहीं उनका लक्ष्य मैं ही न बन जाऊँ, इसके लिए मैं ऐसा करता हूँ। यदि मैं उनका लक्ष्य बन गया तो मैं जड़ मूर्ति बन जाऊँगा ओर वे मेरे पूजक। ईश्वर का विश्वास किये बिना यदि वे मेरा आसरा मान बैठेंगे तो अपनी पूजनीय प्रतिमा के स्थान में वे मुझे बैठा लेंगे और उससे बड़ा अनर्थ होगा। वे लोग मेरे पास आते हैं, प्रभु को खोजने के लिए। उस खोज के रास्ते में ही यदि उनका अन्त हो गया तो वे अपने लक्ष्य पर पहुँच ही जायेंगे, अथवा उस यात्रा से सकुशल लौट आये तो उनकी साधना उन्हें इतना पवित्र बना देगी कि वैसी पवित्रता मेरे पास दस वर्ष तक रहकर भी नहीं पा सकते।

एक दिन सबली ने बहुत से विषयासक्त धनवानों को देखा। वे मौज-शौक में समय काट रहे थे। उन्हें देखकर वे ज़ोर से चिल्ला उठे, ''अफसोस! अफसोस इन लोगों की जिन्दगी के बारे में लाखों बार अफसोस। ये लोग ईश्वर स्मरण में आलसी बन रहे हैं, इसलिए विषयी संसार भी उनसे चिपका हुआ है।''

एक दिन सबली के पास हरी लकड़ी जल रही थी। आगे से लकड़ी में लपट निकल रही थी और पीछे पानी छन छना रहा था। यह देखकर उन्होंने अपने साथियों से कहा– ''तुम कहते हो कि हृदय में ईश्वर के प्रेम की अग्नि जल रही है, यदि यह बात सच है तो इस लकड़ी के भांति आँसू क्यों नहीं टपकते?

एक दिन सबली पागल से होकर जुन्नेद के घर पर आये। वहाँ जुन्नेद की स्त्री अपने बाल संवार रही थी। सबली को देखकर वे अपना तन ढकने की उतावली करने लगी तो जुन्नेद बोले– ''ज़रा भी न घबराओ, जैसी हो वैसी ही बैठी रहो। प्रभु के प्रेम में मस्त जीव नरक की चीज़ों की तरफ आँख उठाते भी नहीं, उनकी नज़र तो रहती है उस दूसरी दुनियाँ की चीज़ों पर।

एक फकीर खिन्न चित्त से सबली के पास आया और बोला महात्मन् मेरी विनती सुने, मुझे उपाय बतायें। मैं बहुत ही दुखी हो रहा हूँ, निराश हो रहा हूँ। फकीरी छोड़कर क्या मैं अपनी असली हालत को वापस लौट जाऊँ?

सबली– ''फकीर! क्या तुम फिर नास्तिकों की टोली में जा मिलोगे? ईश्वर की करुणा से निराश नहीं होना, क्या यह वचन तुमने नहीं सुने?''

फकीर– ''आपके उपदेश से मेरा चित्त स्थिर होगा।''

सबली- ''तुम प्रभु को देखने की इन्तजारी में हो, पर क्या यह वचन नहीं सुने कि नास्तिक के सिवा दूसरा कोई ईश्वर की कृपा पर अविश्वास नहीं करता?''

एक दिन तपस्वी सबली अपने साथियों के साथ जंगल में चले जा रहे थे। वहाँ उन्होंने आदमी की एक खोपड़ी देखी। उस खोपड़ी पर लोक परलोक को पूर्ण करने वाला कुछ लिखा मालूम देता था। उसे देखकर वे पुकार उठे- ''यह खोपड़ी तो किसी महात्मा की अथवा किसी पैगम्बर की होनी चाहिए।''

एक ने पूछा- ''आप ने यह कैसे जाना?

उन्होंने उत्तर दिया- ''यह मस्तक ज़रूर किसी महापुरुष का है, कारण इस लोक और परलोक को पूर्ण किये बिना ईश्वर के दरबार में जा ही नहीं सकते, वही सत्य इस खोपड़ी पर अंकित है।''

एक बार सबली बीमार पड़े। वैद्य ने उनसे कहा 'धैर्य रखना'। उन्होंने उत्तर दिया- ''किस बात का धैर्य रखूँ? जीविका के बारे में आप धैर्य रखने के लिए कहते हो तो जिस चीज़ की मुझे ज़रूरत है, ईश्वर ने मुझे दे रखी है और जो उसने मुझे नहीं दी है उनकी मुझे ज़रूरत नहीं है। मेरे अधैर्य का क्या कारण हो सकता है।''

एक बार तपस्वी सबली बहुत दिनों तक गायब रहे। बहुत खोजने पर भी उनका पता नहीं लगा। बहुत दिन बीत जाने पर एक दिन नपुंसकों की बस्ती से बाहर आते दिखाये दिये।

लोंगों ने पूछा- ''महात्मन्! इनके साथ रहना क्या आपको शोभा देता है?''

सबली- ''हाँ, यही मेरे लिए उचित स्थान था। इस दुनियाँ में जिस प्रकार नपुंसक न स्त्री है न पुरुष उसी तरह धर्मराज्य में मैं न स्त्री हूँ न पुरुष।''

किसी ने उनसे पूछा- ''परलोक का भय कैसे दूर हो?

सबली- ''संसार की आसक्ति से दूर हो जाओ, परलोक का भय अपने आप दूर हो जायेगा।''

सबली ने एक बार कहा था- ''हे प्रभु! यदि आकाश में मेरी फाँसी लटकाये, पृथ्वी को मेरी बेड़ियाँ बनायें और दुनियाँ के सारे आदमियों को मेरा खून चूसने के लिए कहें तो भी मैं तुझसे लेश मात्र भी विमुख नहीं होंऊँगा।''

मृत्यु-काल समीप आने पर सबली की आँखों ने काम देना बंद कर दिया था। पागल होकर वे अपने सिर पर धूल डालने लगे थे और ऐसी व्याकुलता दिखाने लगे

थे जिसका वर्णन नहीं हो सकता। दूसरी बातों के साथ वे यह भी कहते सुने जाते– ''दो प्रकार की हवा चल रही है, एक स्नेह और दूसरी कोप की। जिसकी ओर स्नेह वायु का प्रकोप है वो सहज ही में अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। जब कोप वायु बहती है, तब ऐसी धूल उड़ती है कि कोई दिशा दिखाई देती। मुझे स्नेह वायु मिलती है इसलिए मैं यह दु:ख सहन कर सकता हूँ। इसके बदले यदि कोप वायु आकर मुझे घेर ले तो उसके प्रबल आघातों से ऐसा दु:ख हो कि उसके आगे यह सब दु:ख दब जायें।''

जिस रात उन्होंने प्राण त्याग किया, उस रात को वे बार–बार ये वचन कह रहे थे– ''जिस घर में तुम्हारा निवास है, उस घर में दीप की क्या ज़रूरत है? जो आँखें तेरी सुन्दरता को लुभा गई हैं, उन्हें किस बात का डर है?''

बहुत से लोग उनके पास प्रार्थना के लिए इकठ्ठा हुए– उस समय उनके प्राण नहीं गये थे। लोगों को देखकर उन्होंने कहा– ''ओह ओह मुर्दों की एक टोली जीते जागते के लिए नमाज पढ़ने आई है। कैसे अचरज की बात है यह!''

उनके साथी बोले– ''ला इल्लिलाह! का कलमा पढ़ें। वे बोले– ''बात सच्ची है तो 'दूसरा कोई नहीं' कहना सुनना किस मतलब का? बिना कलमा पढ़े भी चलेगा।''

तो भी एक आदमी ऊँचे स्वर में कलमा पढ़ने लगा। उसे सुनकर सबली बोल उठे– ''कैसे अचरज की बात है, मरा हुआ जीते को पढ़ा रहा है।''

थोड़ी देर बाद किसी ने उनसे पूछा– ''क्यों महात्मन्! अब कैसी हालत है?''

''सखा से मिल गया हूँ'', कहकर उन्होंने तुरन्त प्राण त्याग कर दिये।

किसी को वे एक बार स्वप्न में दिखाई दिए। स्वप्न देखने वाले ने उनसे पूछा– ''परलोक के बाजार में आपने क्या देखा?''

उन्होंने कहा– ''उस बाजार में जले दिलों की ही पूछ है। उन जले दिलों के सिवा और किसी से वहाँ सहानुभूति नहीं पाई जाती। वहाँ जले दिलों पर दवा का लेप किया जाता है, टूटे हुए दिल जोड़े जाते हैं और दूसरी किसी बात पर वहाँ ख़्याल नहीं किया जाता।''

उपदेश वचन

- सच्चा सूफी ईश्वर की गोद में खेलता मुस्कुराता सुन्दर बालक है। ईश्वर की गोद में सूफी बिना किसी संकोच के खेलता–कूदता और गाता बजाता रहता है।
- अपनी प्रिय से प्रिय वस्तु का अपने परम सखा परमात्मा के लिए परित्याग करो, यही प्रभु प्रेम का लक्षण है।
- जो मनुष्य प्रभु प्रेम का विरोध करता है, प्रेम करने योग्य परमात्मा को छोड़कर दुनियावी चीज़ों में फँसा रहता है, उस परमेश्वर को छोड़कर दूसरों को खोजता फिरता है, वह तो उपहास के योग्य ही है।
- गहरे उतर कर तुम उसकी खोज नहीं करते इसीलिए तो उसे नहीं पा सकते।
- ईश्वर जब किसी की विपत्ति को टालना चाहता है तो उसे त्यागी तपस्वी का जीवन प्रदान करता है।
- मनुष्य ने प्रभु को देखा नहीं है इसीलिए वह दुनियावी चीज़ों के पीछे दौड़ता फिरता है। उसने प्रभु को देख लिया होता तो वह दूसरी चीज़ों के पीछे क्यों दौड़ता फिरता?
- जिसने ईश्वर को पा लिया है वह दूसरों का उपदेशक नहीं बनता, वह ईश्वर के सिवा किसी दूसरे को अपना रक्षक, शिक्षक अथवा मार्गदर्शक नहीं बनाता।
- जिस प्रकार वर्षा ऋतु के आने पर जल बरसता है, बिजली चमकती है, मेघ गर्जना करते हैं, फूल खिल उठते हैं और पक्षी खुश होकर गाने लगते हैं, उसी प्रकार परमात्मा के दर्शन हो जाने पर आनन्दित होकर नेत्र जल वर्षा करने लगते हैं, ओठ मृदु हास्य करने लगते हैं, अन्तर की कली खिल उठती है। आनन्द की हवा से मस्तक हिलने लगता है। प्रति क्षण उस प्रिय सखा के नाम की गर्जना होने लगती है और प्रेम की मस्ती प्रभु के गुणगान में मशगूल कर देती है।

- सत्य ज्ञान क्या है? परमात्मा और अपने स्वरूप को ठीक-ठीक समझ लेना।
- विश्वस्त नि:शंक ज्ञान कौन सा है? वह ज्ञान जो प्रभु प्रेरित पैगम्बरों और अनुभव महात्माओं की वाणी के द्वारा प्राप्त हुआ है।
- एक निष्काम मनुष्य का किसी प्रकार भी पतन नहीं होता, किन्तु एक सकाम व्यक्ति की बहुत शीघ्र ही अधोगति हो जाती है।
- जो मनुष्य ईश्वर के सिवा और किसी चीज़ से संतोष नहीं मानता वही सच्चा त्यागी फकीर है।
- एक वैरागी के चढ़ने के लिए सौ से ज़्यादा सीढ़ीयाँ होती हैं। दुनियाँ की सारी सम्पत्ति का त्याग करके भी यदि मन में यह भाव आ जाये कि खाने-पीने के लिए टुकड़ा बच रहता तो ठीक होता तो यही समझना चाहिए कि वह त्यागी अभी पहली सीढ़ी पर ही है, उसके वैराग्य के पूर्ण होने में बहुत देरी है।
- प्रभु की पूजा करना ही सच्चा कर्त्तव्य है। उसकी खोज करना ही सच्चा रास्ता है, उस परमात्मा का दर्शन होना ही एक सच्ची बात है।
- परमात्मा के दर्शन करके उसका स्मरण करना भी भूल जाओ, यही ऊँचा से ऊँचा स्मरण है।
- वैराग्य है निवृत्ति, संसार है शून्य, उस शून्य के प्रति वैराग्य होना ही निवृत्ति है।
- प्रभु स्मरण के लिए संसार को भूल जाओ और परलोक की बात भी मत सुनो।
- लोक कल्याण को अपने कल्याण से भी अधिक मानना ही सच्ची साधुता, महत्ता और उदारता है।
- धन दौलत की ओर नजर न डालकर सबके स्वामी परमात्मा की ओर दृष्टि रखना ही सच्ची कृतज्ञता प्रदर्शित करना है।

- इस समय तुम्हें जो क्षण प्राप्त है, वही तुम्हारा सबसे कीमती धन है। आध्यात्मिक जगत में काल नाम की वस्तु ही नहीं है, इसलिए भूत और भविष्य भी नहीं है।
- जगत में ऐसे लोग बहुत हैं जो उपासना करते हैं, नियमानुसार शास्त्र सुनते हैं तो भी उनकी उपासना आदि का कोई फल नहीं होता।
- जिस समय मैं ईश्वर के ध्यान, भजन में तन्मय व तद्रूप हो जाता हूँ, तभी मैं कृतार्थ होता हूँ।
- यदि मैं ईश्वर की सत्ता और सामर्थ्य को याद रखता तो ईश्वर के सिवा और किसी के भय को अपने मन में जगह न देता।
- सारे संसार का एक ग्रास बनाकर यदि बालक के मुँह में दे दिया जाय तो भी वह भूखा ही रहेगा। इस संसार में ऐसे बालक सरीखे बहुत से प्राणी देखकर मुझे उन पर बहुत दया आती है।
- यदि सारा संसार भी मेरे अधिकार में होता तो मैं उसे एक नास्तिक अथवा लोभी को दान में दे देता और वह उसे स्वीकार कर लेता तो मैं उसका अपार उपकार मानता।
- दुनियावी चीज़ों में ऐसी ताकत नहीं कि वे प्रभु प्रेमी पर अधिकार जमा सकें।

खुसरो बाजी प्रेम की, मैं खेलूँ पिया के संग।
जीत गयी तो पिया मोरे, जो मैं हारी पिया के संग।

***

परेड में पीछे मुड़ बोलते ही पहला आदमी आखिरी और आखिरी आदमी पहले नंबर पर आ जाता है। जीवन में कभी आगे होने का घमण्ड और पीछे होने का गम नहीं करें। पता नहीं कब ज़िंदगी बोल दे –"पीछे मुड़"।

विवेक विचार

कल्याण

- जगत में जितने भी चराचर प्राणी हैं, सबके अन्दर आत्मा तथा अन्तर्यामी रूप से भगवान् विराजमान हैं। भगवान् ही उन सब रूपों में प्रकट हैं। अतएव उनकी सेवा करना, उन्हें सुख पहुँचाना और उनका हित करना हमारा धर्म है।
- यदि हम जगत के प्राणियों से द्वेष-द्रोह करते हैं, कठोर वचन कहकर उन्हें मर्म-पीड़ा पहुँचाते हैं, क्रोध तथा अभिमान के वश होकर उनका अपमान-तिरस्कार करते हैं एवं कामना और लोभ के फंदे में पड़कर उनका स्वत्व-हरण करते हैं तो हमारे बाहरी पूजन और दान से भगवान् कभी प्रसन्न नहीं होंगे।
- यदि हम छल-कपट करके लोगों का धन लूटते हैं, मीठे बोल बोलकर दूसरों को धोखा देते हैं, अपने अधिकार तथा शक्ति का प्रयोग करके गरीबों और असहायों को दबाते हैं तो हमारे बाहर के आडम्बर से भगवान् कभी प्रसन्न नहीं होंगे।
- हम यदि अनाथों और असमर्थों को डराकर या फुसलाकर अनुचित लाभ उठाते हैं या सत्ता, वैभव और पद के प्रभाव से गरीब पड़ोसियों के घर-द्वार छीनते हैं एवं अधिकारियों के साथ षड्यंत्र करके सरल हृदय के लोगों को ठगते हैं तो हमारी पद-मर्यादा, नेतागिरी या थोथे धर्मात्मापन से भगवान् कभी प्रसन्न नहीं होंगे।
- यदि हम विधवाओं के धन को धोखे से हड़प जाते हैं, उनका अपमान-तिरस्कार करते हैं, उनके साथ बुरा व्यवहार करते हैं, और उनको मीठी-मीठी बातों में फँसाकर धर्मच्युत करते हैं, तो भगवान् हमारे तिलक-मालाओं, खादी के कपड़ों या सेवक के स्वाँग से प्रसन्न नहीं होंगे।
- यदि हम अपने मन में दम्भ, दर्प, वैर-विरोध, क्रोध-हिंसा, अभिमान-गर्व, छल-कपट और राग-द्वेष आदि को भी रखते हैं और ऊपर से साधु बने रहते हैं तो भगवान् हमारी उस कृत्रिम साधुता से और हमारी उपदेश भरी शास्त्र वाणी से प्रसन्न नहीं होंगें।
- **भगवान की प्रसन्नता के लिये किसी बाहरी आडम्बर की, वेशभूषा की, बोलचाल के ढंग की, उपदेश-आदेश देने की, किसी प्रकार का स्वाँग**

बनाने की और साधु का वेष धारण करने की आवश्यकता नहीं है। भगवान की प्रसन्नता के लिये तो चाहिये-निर्मल मन, जिसमें अहिंसा, सत्य, अलोभ, सन्तोष, दया, अस्तेय, अमानिता, अदम्भिता, वैराग्य, प्रेम, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, नम्रता, उदारता, मधुरता, गम्भीरता, धीरता, सहिष्णुता, शुचिता, श्रद्धा, धर्मभीरुता, क्षमा और ;जुता आदि दैवी गणु भरे हों और सबसे प्रधान रूप में चाहिये-भगवान के प्रति मन में अहैतु की विशुद्ध भक्ति।

✤ मानव-जीवन बहुत थोड़े काल के लिये प्राप्त हुआ है और प्राप्त हुआ है भगवान को प्रसन्न करके उनको प्राप्त करने के लिये। यदि यह कार्य इस जीवन में न बन पड़ा और विषय-विलास में ही जीवन बीत गया तो उससे केवल जीवन की व्यर्थता ही नहीं होगी, महान पाप का संग्रह भी होगा, जो अनन्तकाल तक दु:ख देता रहेगा।

(साभार- कल्याण)

प्रेषक- अनिल कुमार, पटना

पतन के कारण

महाप्रस्थान करते समय पांडवों ने पश्चिम से उत्तर दिशा में आकर महागिरि हिमालय का दर्शन किया। उस को लाँघ कर जब वे आगे बढ़े तो उन्हें बालू का समुद्र दिखायी पड़ा। तत्पश्चात् उन्होंने पर्वतों में श्रेष्ठ महागिरि सुमेरु का दर्शन किया। समस्त पांडव एकाग्रचित्त होकर बड़ी तेजी के साथ चल रहे थे। उनके पीछे आती हुई द्रौपदी लड़खड़ाकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। उसे नीचे पड़ी देख महाबली भीमसेन ने धर्मराज से पूछा- 'भैया! राजकुमारी द्रौपदी ने कभी कोई पाप नहीं किया फिर बताइये, क्या कारण है कि वह नीचे गिर गयी?

युधिष्ठिर ने कहा- नर श्रेष्ठ! इसके मन में अर्जुन के प्रति विशेष पक्षपात था, आज यह उसी का फल भोग रही है। यह कहकर धर्मात्मा युधिष्ठिर द्रौपदी की ओर देखे बिना ही अपने चित्त को एकाग्र करके आगे बढ़ गये। थोड़ी देर बाद सहदेव भी गिरे। उन्हें गिरते देख भीमसेन ने युधिष्ठिर से पूछा- 'भैया! यह माद्री नन्दन सहदेव, जो सदा हम लोगों की सेवा में संलग्न रहता और अहंकार को कभी अपने पास

फटकने नहीं देता था, आज क्यों धराशायी हुआ है?'

युधिष्ठिर ने कहा- 'राजकुमार सहदेव किसी को अपने जैसा विद्वान नहीं समझता था, इसी दोष के कारण इसे आज गिरना पड़ा है।'

द्रौपदी और सहदेव को गिरे देख बन्धु प्रेमी शूरवीर नकुल शोक से व्याकुल होकर गिर पड़े। यह देख भीमसेन ने पुनः उनसे प्रश्न किया- 'भैया! संसार में जिसके रूप की समानता करने वाला कोई नहीं था, जिसने कभी अपने धर्म में त्रुटि नहीं होने दी तथा जो सदा हम लोगों की आज्ञा का पालन करता था, वह हमारा प्रिय बन्धु नकुल क्यों गिर पड़ा?' भीमसेन के इस प्रकार पूछने पर युधिष्ठिर ने नकुल के सम्बन्ध में यों उत्तर दिया-'भीमसेन! नकुल हमेशा यही समझता था कि रूप में मेरे समान दूसरा कोई नहीं है। इसके मन में यही बात बैठी रहती थी कि मैं ही सबसे बढ़कर रूपवान हूँ। इसीलिये इसको गिरना पड़ा है।' उन तीनों को गिरे देख अर्जुन को बड़ा शोक हुआ और वे भी अनुताप के मारे गिर पड़े। दुर्धर्ष वीर अर्जुन को गिरे और मरणासन्न हुए देख भीम ने पुनः प्रश्न किया- 'भैया! महात्मा अर्जुन कभी परिहास में भी झूठ बोले हों, ऐसा मुझे याद नहीं आता या फिर यह किस कर्म का फल है जिससे उन्हें भी पृथ्वी पर गिरना पड़ा।'

युधिष्ठिर बोले- ''अर्जुन को अपनी शूरता का अभिमान था। इन्होंने कहा था कि 'मैं एक ही दिनमें शत्रुओं को भस्म कर डालूँगा। किंतु ऐसा किया नहीं। इसी से आज इन्हें धराशायी होना पड़ा है। इतना ही नहीं, इन्होंने सम्पूर्ण धनुर्धरों का अपमान भी किया था, जिसका फल इन्हें भोगना पड़ रहा है। अतः अपना कल्याण चाहने वाले पुरुष को ऐसा नहीं करना चाहिये।''

यों कहकर राजा युधिष्ठिर आगे बढ़ गये। इतने में ही भीमसेन भी गिर पड़े। गिरने के साथ ही उन्होंने धर्मराज युधिष्ठिर को पुकार कर कहा- राजन्! जरा मेरी ओर तो देखिये। मैं आपका प्रिय भीमसेन हूँ और यहाँ गिरा हुआ हूँ, यदि जानते हों तो बताइये, मेरे गिरने का क्या कारण है?'

युधिष्ठिर ने कहा- ''भीम! तुम बहुत खाते थे और दूसरों को कुछ भी न समझ कर अपने बल की डीगें हाँका करते थे। इसी से तुम्हें भूमि पर गिरना पड़ा है।''

यह कहकर महाबाहु युधिष्ठिर उनकी ओर देखे बिना ही आगे चल दिये।

(साभार- कल्याण)

प्रेषक- अनिल कुमार, पटना

गुरु सेवक सचराचर

शिष्य की आस्था तीन तरह की होती है– सेवा की आस्था, पूजा की आस्था और भक्ति की आस्था। सेवा की आस्था तन मन धन की, पूजा की आस्था विनय–विश्वास–दीनता की और भक्ति की आस्था प्रीति–प्रतीति–श्रद्धा की। तीनों ही उत्तरोतर उत्कर्ष की साधना है।

गुरु की देह शिष्य के लिए तीर्थ है। गुरु को हरारत हो तो उनके पांव दबाना अहोभाग्य है; उन्हें थकान हो तो पंखा झलना परम पुरुषार्थ है; उन्हें क्लेश हो तो परिचर्या करना परमार्थ है; उनकी सुख–सुविधा का ख़्याल मर्यादा है। हाथ पांव की सेवा से गुरु प्रसन्न होता है। लेकिन यही बहुत महत्वपूर्ण बात नहीं है; हाँ, इसका भी अपना महातम्य है।

गुरु का शरीर ईश्वर का मंदिर है पर मंदिर की परिक्रमा काफ़ी नहीं है। मंदिर तक पहुँच गये तो भीतर के ईश्वर से भी भेंट कर ही लेना है। मंदिर की राह याद है तो भीतर के भगवान को भूलना नहीं है। मंदिर की मरम्मत लाज़िम है– रंग–रोगन होना चाहिए– पर पूजा तो भीतर के भगवान की ही होगी। मंदिर का रख रखाव ज़रूरी है, पर अनिवार्य तो भगवान की आराधना ही है। कलश की रक्षा होनी चाहिए, पर पीना तो अमृत ही है।

गुरु की निकटता भौगोलिक नहीं है, निकटता आत्मिक है। समीपता जागरण है। गुरु के मन के समीप होना है। गुरु को घेरे रहना सेवा नहीं है। यह तो दीप बुझाने की विधि है। जो देह को ही गुरु मानते हैं, वे ज्योति से चुक जाते है। प्रकाश के लिए लौ को पकड़ना नहीं है जैसे सुगंधि के लिए फूल को मुठ्ठी में बांधना नहीं है। शरीर की सेवा तो अविवेकी शिष्य करता है, वह भरत जैसा स्नेही नहीं होता।

कुछ लोग गुरु की बराबरी में बैठते हैं– यह गुरु को अच्छा लग सकता है, पर शिष्य के पक्ष में यह बेअदबी है। ऐसे शिष्य अहंकार से ख़ाली नहीं हो सकते हैं। गुरु के दायें–बायें लगे रहने में मालकियत की बू आती है। अपनी पहचान बनाने के लिए गुरु को घेरे रहना भी घातक होता है। ऐसे लोग गुरु के आगे दीखने का दंभ भरते हैं। ये अपने को दावेदार मानते हैं और अनको परमपद की सूचना भी नहीं होती– शायद इनकी नज़र पद पर ही होती है– और फिर ये गद्दी के हकदार हो जाते हैं।

पर सच्चा शिष्य देह से दूरी बनाये रखता है। गुरु के समीप वह तब आता है, जब तैयार हो जाता है। वह गुनगुने प्यार से तृप्त नहीं होता, वह तो सूक्ष्म उड़ान की प्रतिक्षा करने के लिए अपने आपको मिटाने में लगा रहता है, अपने को छिपाने में लगा रहता है। अत: वह भीड़ से दूर रहता है।

भक्ति गुरु में अपने को लय करने की कला है और यही परम सेवा है। इस आस्था का शिष्य गुरु का उपयोग दर्पण की तरह करता है- कभी समीप गया, गुरु के चेहरे से अपना चेहरा मिलाया और फिर अपने को सजाने में लग गया। वह अपने को गुरु प्रेम के नशे में डुबाये रहता है। वह गुरु की याद में खोया रहता है। गुरु के रंग में वह सराबोर रहता है। वह गुरु के ध्यान में मस्त रहता है। उस पर गुरु प्रेम की खुमारी रहती है।

गुरु भक्त के मन-प्राण में 'गुरु' मंत्र की गूँज रहती है। 'गुरु' उसका जप होता है। उसकी साँसों में 'गुरु-गुरु' की तार लगी होती है। उठते-बैठते, सोत-जागते, करवट लेते, डकारते-जम्हाई लेते वह 'गुरु' मंत्र की माला जपता रहता है। 'हे गुरु', 'जय गुरुदेव', 'मेरे गुरुदेव' आदि की वह रटन लगाए रहता है। 'जय गुरुदेव' उसके जीवन की टेक हो जाती है। वह हर समय 'श्री गुरु', 'सद्गुरु' का अखण्ड कीर्तन करता रहता है।

गुरु में भगवान दीखे बिना गुरु-भक्ति शुरु नहीं होती। भगवान दीखता है अर्न्तदृष्टि से, अर्न्तभाव से, सद्भावना से, प्रीति-प्रतीति से। आत्म-शुद्धि और आत्म-परिष्कृति से गुरु से अभेद प्रतीति होती है। जब दूरी मिटती है तो तड़प होती है। ऐसा शिष्य गुरु के लिए तड़पता है, रोता है, बिलखता है। गुरु की याद में आवेशित हो जाता है। उसकी आँखे डबडबाई रहती हैं।

गुरु परम धनी होता है। हम धन से उसकी क्या सेवा करेंगे? उसकी अधिकांश ज़रूरतें प्रकृति पूरा कर देती है। वह अपनी आवश्यकताओं को इतना कम रखता है कि अपनी परवाह ही नहीं करता। रुपये पैसे तो बच्चों के खेलने की चीज़ें हैं, सयानों को उनसे क्या आकर्षण?

इस राह में पैसे बहुत दूरी तक मदद नहीं करते। अगर गुरु सेवा की राह में हम पैसा लगाना ही चाहते हैं तो उससे सत्संगी भाइयों की मदद करें, इससे गुरु प्रसन्न होगा। अगर पैसे सच्ची कमाई के हैं तो प्रसाद स्वरूप फल मिष्ठान ला सकते हैं। गंदी

कमाई के पैसे से गुरु की तपस्या लांछित न करें। गरीबों को अन्न वस्त्र दें, निर्धनों को भंडारा दें, कंगालों की मदद करें, गरीब छात्रों की सहायता करें। सन्मार्ग पर परमार्थ करें तो गुरुकृपा बरसेगी। भंडारे में भाइयों को भोजन करायें, पत्तलें उठायें- यही गुरु की प्रिय तन-सेवा होगी।

सही तो यह है कि गुरु के पास कुछ पाने को जाते हैं, देने को नहीं। धन से गुरु की सेवा करने वाला दंभ से ऊपर नहीं उठ सकता। गुरु से जो मिलता है वह विराट है और हम जो देते हैं वह क्षूद्र है। वह साम्राज्य देता है हृदय का और हम देते हैं पाप और अहंकार। बल्कि हम अपना अहंकार भी देना नहीं चाहते हैं।

गुरु के भीतर आनन्द उमड़ रहा है, वह खुशियाँ लेकर क्या करेगा वह आकांक्षा और वैभव की तरफ झाँकता भी नहीं। विराट में खोया व्यक्ति तुच्छ की आशा ही क्यों करे? जो अमृत वर्षा में भीग रहा है वह ढाबर-गड्ढे में भला क्यों नहाए? जो धुन के संगीत में मस्त है वह दादुर धुन पर कैसे रीझे? वस्तुतः रुपया-पैसा निकृष्ट दान है भी।

गुरु तो चाहता है कि आश्रितों का उद्धार हो। भक्त का बेड़ा पार हो, सेवक को आत्म-साक्षात्कार हो, प्रेमी को ईश्वर के दीदार हों। गुरु जो चाहे वही करना सेवा है। गुरु को जो बात प्रिय हो वही करना पूजा है। गुरु जिस कार्य से प्रसन्न हो वही उपासना है और गुरु जैसे रखे, वही साधना है।

गुरु की सेवा कृतज्ञता है, आत्म संतोष है। गुरु की सेवा कर कृतार्थ हम होते हैं। सेवा से तपस्या हमारी खड़ी होती है। त्याग हममें आता है। सेवा से हम भरोसेमंद बनते हैं। हम निर्मल बने कि गुरु हमें प्यार करें। हम दीन बनें कि गुरु हमें गले लगायें।

गुरु स्वयं सेवक है। उसका काम भी सेवक बनाना है। शिष्य की सेवा वह इसलिए लेता है कि शिष्य सेवक बन सके। शिष्य तैयार करना तो सेवक तैयार करना है।

सेवा में यदि कर्त्ताभाव आ जाता है तो वह बंधन है। सेवा में प्रेम भाव है तो वह मुक्ति है। कर्त्ताभाव के पीछे अहंकार होता है। सेवा स्वभाववश हो तो पूजा है, सहज हो तो भक्ति है। सेवा तो उपकृत होने का मार्ग है। गुरु की सेवा यही है कि हम सच्चे शिष्य बन जायें, सेवक बन जायें। सेवा उऋण होने की कला है, उपकार का बदला है। इसी कारण सेवा को उच्चतर उत्तम कर्म कहा गया है।

शांति पाठ
(तत्व विवेचना)

'शान्ति' शब्द का प्रयोग 'मन' की एक अवस्था- विशेष के जिन अर्थों में किया जाता है, वे हैं- (1) वेग, क्षोभ अथवा क्रिया का अभाव (2) स्तब्धता, सन्नाटा (3) चित्त का एक ठिकाने पर होना (4) धीरता (5) वासनाओं से छुटकारा, वैराग्य (6) मृत्यु या मरण। पाठ एक अलग शब्द है और इसे शान्ति के साथ जोड़ कर 'शान्ति-पाठ' कहा गया है तथा जो एक धार्मिक अनुष्ठान के तौर पर प्रयुक्त होता है। शब्द-कोषीय सन्दर्भ में पाठ का अर्थ है- पढ़ने की क्रिया या भाव। किसी मानसिक स्थिति के पाठ को करना, यह तर्क का विषय बन सकता है। हाँ यह अलग बात है कि किसी शब्द के पाठ के परिणाम स्वरूप, शांति जैसी मानसिक (आध्यात्मिक) स्थिति उत्पन्न हो जाय।

मन या सुरत से प्राण, प्राण से जीवात्मा, जीवात्मा से शुद्धात्मा और शुद्धात्मा से अनंत सत्ता की परिणति तक का एक निश्चित मार्ग है तथा शब्द के उसकी परिधि में पहुँचने तक उसे निम्नलिखित सात स्टेशनों से गुज़रना होता है- (1) पठ (2) रट (3) जप (4) स्मरण या मनन (5) दृष्टाभाव (6) अनुराग (7) तुर्या। सूफ़ी रहस्यवाद में इसी उपरोक्त गुह्य-मार्ग को अपनी साधना के अभीष्ट का स्थान दिया गया है और इसी लिए ज़िक्र व फिक्र दोनों में से ज़िक्र को प्राथमिकता दी जाती है।

'शान्ति-पाठ' शब्द को जिन अर्थों से संपन्न एक धार्मिक अनुष्ठान के रूप में यहाँ पर प्रस्तुत करने की चेष्टा की गयी है, वस्तुतः वो सूफी संतों की ही देन है। सूफी संतों के इतिहास में सबसे पुराने समझे जाने वाले 'सिलसिला-ए-नक़्शबन्दिया' के बारे में डा. मोहम्मद हनीफ़ (लखीमपुर खीरी उत्तर प्रदेश) ने अपने शोध के मध्य रहस्योघाटन किया है कि इसका पूर्व नाम 'ओवैसी' (Awesi) था। इस सम्बन्ध में उनका मत है - ''Most of the followers of the Order learned the method of the *system* by Spirits of the late Sufis'' अर्थात्- इस मत की शिष्य परंपरा में अधिकतम पन्थाइयों द्वारा तरीक़त (ब्रह्मवाद) का इल्म (जानकारी) शरीर-मुक्त संतों से उनकी मज़ार-शरीफ़ के ज़रिये से प्राप्त किया जाता है।

प्राप्त जानकारी के अनुसार ये पन्थायी आत्मसाक्षात्कार हेतु किसी शरीरधारी आध्यात्मिक गुरु के पास न जा कर किसी क़ामिल बुज़ुर्ग (निर्वाण प्राप्त संत) की मज़ार पर जा कर नियमपूर्वक अपनी अक़ीदत पेश करते थे और इस प्रकार की गयी इबादत के अर्न्तगत प्रतिदिन एक विशिष्ठ एवं अनुशासनबद्ध तरीके के अनुसार 'शिज़्र–शरीफ़', 'फ़ातहा', 'दुरूद शरीफ़' और तब प्रसाद चढ़ाने का मंत्र, 'कुल' इत्यादि का, पूर्ण समर्पण भाव से पाठ किया करते थे/हैं। किसी आशय विशेष एवं मन्त्रों की पवित्रता के प्रश्न को ख़ष्टिगत रखते हुए इसका मूल पाठ (original text) न दे कर केवल भाव की स्पष्टता हेतु यहाँ पर इसका लहदी–रूपान्तर मात्र ही दिया जा रहा है–

(1) पापात्मा शैतान से बचने के लिये मैं परमात्मा की शरण लेता हूँ, प्रथम स्मरण करता हूँ परमात्मा का जो अत्यन्त कृपालु व दयालु है। हर प्रकार की स्तुति भगवान के ही योग्य है। वो परमपिता, परमात्मा सम्पूर्ण विश्व का पालन पोषण करने वाला, उद्धारक, परम कृपालु एवं परम दयालु है। न्याय के दिन का वही मालिक है। प्रभो! हम आपकी ही आराधना करते हैं और आपकी ही शरण एवं सहायता के प्रार्थी हैं। हे दयानिधे! हमें उस प्रशस्त मार्ग पर ले चलिए जिस पर चल कर साधक आपकी कृपा, दया व प्रसन्नता के अधिकारी बनें हैं, उस मार्ग पर नहीं जिस पर चल कर मनुष्य आपकी अप्रसन्नता और आपके दंड के भागी बने हैं अथवा जो भूले–भटके हुए हैं। ऐसा ही हो !!!) .... फातहा

(2) हे परमपिता परमपिता परमात्मा! हमारे आश्रय हज़रत मोहम्मद पर जो बड़े कृपालु, दयालु व बड़े दाता हैं, अपनी कृपा की वृष्टि कर उनकी संतान पर भी अपनी दया व कृपा की वृष्टि करें और उन्हें दीर्घायु प्रदान कर, सदा प्रसन्न रक्खें।..... दरूद शरीफ

(3) ए पैग़म्बर! लोग तुम्हें परमात्मा का बेटा बतावें और तुमसे परमात्मा का हाल पूछें तो तुम उनसे कहना– वो परमात्मा एक है। वो बेनियाज़ (स्वतंत्र) है। उसको किसी आश्रय की आवश्यकता नहीं है न उससे कोई पैदा हुआ है, न वो किसी से पैदा हुआ है और न उसकी समता का कोई दूसरा है।

यह कोई अलग या भिन्न बात नहीं है। हिन्दुओं में भी अख़श्य देवी–देवताओं की आराधना आज भी प्रचलित है। यह लोग भी अपनी पूजा–अर्चना की समाप्ति पर अपने आराध्य की आरती उतारते हैं। आरती, षोडषोप्रचार पूजन का एक अंश है। इसके अंतर्गत पढ़ा जाने वाला स्तोत्र हृदयद्रावक आकुलता के भाव से

संपन्न होता है और इसे अत्यंत कातर व संवेद स्वरों में लय हो कर ही गाया जाता है।

लक्ष्य यही है कि साध्य अथवा हमारी साधना का विषय अख्रश्य व अव्यक्त है। हम उसके गुण्गान में ऐसे लीन व बेसुध हो जायें कि हमारा कर्तापन, हमारी उपस्थिति और हमारी पहिचान, सब कुछ उस एक में लय हो जाय और केवल वो ही वो शेष रहे। इस सिद्धांत का सबसे अधिक विस्तार अद्वैत वेदांत के बाद सूफी मतावलम्बियों के मध्य ही हुआ और इसका आकार भी बढ़ा। कालान्तर में अन्यान्य दूसरे मतावलम्बियों का भी इस विचार-धारा में सम्मिलित होना देखा जाने लगा। धीरे धीरे एक दिन ऐसा आया की लौकिक स्तर पर बिना धर्म परिवर्तन किये-कराये ही दूसरे धर्मावलम्बी भी इस साधना पद्धति से जुड़ने लगे इसका अविश्वसनीय किन्तु जीता-जागता उदाहरण, उत्तर प्रदेश के जनपद फर्रुखाबाद में स्थित, फतेहगढ़ नगर के गर्भ को चीरती हुयी उसके कैंट एरिया से कमालगंज गुरसहायगंज होते हुए कन्नौज की वाली सड़क के किनारे स्थित गृहस्थ संत श्री श्री लाला जी महाराज की समाधि पर प्रतिवर्ष ईस्टर अवकाश में एकत्र हज़ारों नर-नारियों मध्य देखने को मिलता है।

परमपूज्य श्री श्री लाला जी महाराज की समाधि पर उनके जलसा-सालाना (भंडारे) के अवसर पर संपन्न होने वाले अनेक दूसरे कार्यक्रमों के मध्य सबसे अधिक आकर्षक, सहज और प्रचलित कार्यक्रम शांतिपाठ ही है। इसमें भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के हज़ारों की संख्या में मतावलम्बी लम्बी-लम्बी सफ़ेद चादरों के दोनों ओर कतार-बद्ध हो कर बैठते हैं। इन चादरों पर छोटे-छोटे बादाम और कमल के बीज बिखेर दिए जाते हैं। प्रत्येक सहभागी अपने हाथ में दाने उठा कर, क्रमशः एक-एक दाने को ''ऊँ शांति'' के उच्चारण से संपन्न मानसिक-पाठ के साथ चादर पर छोड़ते हुए अपने पास एक अलग ढेर बनाते जाते हैं। जब समस्त दाने अलग अलग छोटी छोटी ढेरिओं में समाप्त हो जाते हैं तब किसी के निर्देषनात्मक इशारे पर इन्हें पुनः मिला कर बिखेर दिया जाता है। समय व सामर्थ्य के अनुसार यही क्रिया अनेक बार दोहराई जाती है। अंत में प्रसाद लगाकर बीच में रक्खा जाता है। सभी सहभागी याचना की मुद्रा में अपने दोनों हाथ ऊपर उठाते हुए बग़ैर आवाज़ के और बग़ैर जुबां के ओंठो को प्रयोग में लाते हुए कुछ मन्त्र पढ़े जाते हैं। बाद में इस प्रसाद को सहभागियों में बाँट दिया जाता है। जो इसे बड़ी ही श्रद्धा के साथ ग्रहण कर इसका पान करते

हैं। यों तो 'शान्ति-पाठ' का बस इतना सा वृत्तांत है किन्तु इसके गर्भ में छिपी हुयी सच्चाईयाँ और भी हैं।

आपको (पाठकों) जान कर हैरानी होगी कि 'शान्ति-पाठ' नामक अनुष्ठान, जैसा कि आज प्रचलित है, परमपूज्य महात्मा रामचन्द्र जी (लाला जी) महाराज के दैहिक जीवन-काल पर्यन्त अस्तित्व में नहीं आ पाया था। उस समय तक केवल शरीर मुक्त सूफी-संतों के 'उर्स' भंडारा के अवसर पर 'दुरुद-शरीफ़' का पाठ किया जाता था। बाद में इसे संतों व महापुरुषों के निर्वाण-दिवस के अवसर पर किया जाने लगा तथा इस प्रकार पर्याप्त समय तक इसका अस्तित्व 'सूतक-अनुष्ठान' के तौर पर प्रचलन में रहा और आज भी यह आम धारणा है कि यह मृतकों के निमित्त ही किया जा सकता है; शरीरधारियों के लाभार्थ अथवा उनके पक्ष में नहीं किया जा सकता है।

जनाब लाला जी साहिब के पर्दा कर जाने के पश्चात्त आपके सुयोग्य साहिबज़ादे, संत सन्तसद्गुरु जगमोहन नारायण जी साहिब ने एक विचार आम-लोगों के समक्ष रखा- ''हम ईश्वरोपासना के मध्य अनेक व भिन्न-भिन्न अनुष्ठान करते हैं किन्तु उद्देश्य सभी का एक ही होता है कि- 'दो', 'दो' और 'दो' - लगातार माँगते ही रहना और वह भी 'आत्मसंसूचक' (Autosuggestion) के आयाम में, इत्यादि इत्यादि। उनका मत था कि कभी तो कुछ न कुछ ऐसा किया जाय कि जिसका अभिप्राय हो कि 'लो' यह मेरी (आध्यात्मिक) कमाई की आय है, इसे 'आप सादर ग्रहण करो'- उनका मत था कि कोई ऐसा अनुष्ठान अवश्य होना चाहिए कि जिसमें अपनी आध्यात्मिक कमाई या पूजा का फल किसी को अर्पित किया जाय। उनके इस मत का व्यापक तौर पर स्वागत हुआ और इसी का परिणाम आज देखने को मिल रहा है कि जो लोग पूज्य लालाजी साहिब की आध्यात्मिकता को मूल केंद्र मान कर उनसे जुड़े हुए हैं, उन हलकों में आज भी इसका प्रबल प्रचलन है।

हमें यह कहते हुए बड़ी प्रसन्नता है कि 'शान्ति-पाठ' का यह अनुष्ठान आज केवल शरीर-मुक्त संतों के लिये ही सीमित न रह कर इसका प्रचलन अपने शरीरधारी आध्यात्मिक गुरुजनों एवं अन्य पूज्य व प्रियजनों के वास्ते भी किया जाने लगा है। इतना ही नहीं अनेक प्रेमीजन, बंधु-बांधवों, माता-पिता अथवा बेटे-बेटियों के लाभार्थ उनके पक्ष में भी इसका प्रयोग देखने को मिलता है।

किसी बुजुर्ग (सन्त) की 'समाधि' पर हाज़री के मौके पर, माला के एक-एक दाने पर 'ऊँ शान्ति' का जाप किया जाता है। यह जाप कम-से-कम एक माला (108) अवश्य होना चाइये।

शान्ति पाठ निर्विवादित तौर पर ज़िक्र या जाप की श्रेणी में आता है। परमपूज्य लालाजी साहिब ने अपनी पुस्तक 'कमाले इंसानी' में लिखा है- ''जानना चाहिए कि ज़िक्र को मराक़ब: (ध्यान) पर मुक़द्दम रखना (प्राथमिकता देना) चाहिए यानि कि जाप को पहले कर लेना चाहिए तब मुराकब: और फिक्र की तरफ़ तवज्जो: दिलाना चाहिए। ज़िक्र और जाप ज़्यादह ज़रूरी हैं और इसी को पहिले शुरू कराना चाहिए। बाज़ बुजुर्ग पहले ही मर्तबा मुराकब: का हुक़्म दे देते हैं, यदि अगर मुरीद के इस्तेदाद इस लायक हैं और उसका ऐसा संस्कार है तो ऐसा करा देना चाहिए, लेकिन सच और अच्छी बात यही है कि अभ्यासी को पहले ज़िक्र और जाप से रंगीन कर दे और जोश-खरोश में ले आवे, उसके बाद ही उसे 'मुराकब:' और फिक्र से धीमा करें, और ठहराव व आराम दे।'' अत: दैनिक अभ्यास से पूर्व माला पर समय व सामर्थ्य के अनुसार इसका जाप किया जाना चाहिए।

फतेहगढ़ सत्संग जो कि 'नक़्शमुरा' (नक्शबंदिया-मुजद्दिया-मज़हरिया-रामचंदरिया) सिलसिला के नाम से जाना जाता है व उससे जुड़े हुए हलकों में व्यक्तिगत स्तर पर अभ्यासी सामूहिक तौर पर प्रतिदिन तीसरे पहर साढ़े तीन से चार बजे तक इस जाप को किया करते हैं। इसके अतिरिक्त देखने में यह भी आया है कि अन्य अनेक आस्थानों व आश्रमों में भी ऐसे अनुष्ठानों के निमित्त यही समय निश्चित किया गया है।

वार्षिक भंडारों, विशेष सत्संग के उत्सवों और पितृ-पक्ष में सामूहिक 'शांति पाठ' का प्रचलन है और अनुयायी भक्त इस अनुष्ठान के माध्यम से अपने बुज़ुर्गों को याद करके उनका गुह्य स्पर्श और आशीर्वाद प्राप्त करते हैं।

अपनी संतानों व अन्य प्रियजनों इत्यादि के पक्ष में प्रार्थना के तौर पर भी इसका प्रयोग किया जा सकता है। घर-गृहस्थी में कभी न कभी ऐसा समय अवश्य आता है जब हमें हमारे द्वारा प्रयुक्त सभी भौतिक साधन बेकार प्रतीत होते हैं। संतों की शब्दावली में इन्हें 'आध्यात्मिक-दु:ख' कहा जाता है, जब हम अपने को अकारण ही असहाय व बेसहारा महसूस करते हैं। दूसरे मत व सम्प्रदायों में मंदिरों, मज़ारों, सयानों (तान्त्रिक) इत्यादि के पास सहायतार्थ दुआ अथवा

ताबीज़ के हेतु जाने का रिवाज़ है किन्तु शांतिपाठ साधना, चूँकि आध्यात्मिकता की श्रेणी में नहीं आती, ईश्वर-आधीनता के विश्वास में शक और बाधा लाती है। उनका यह भी मत है कि इस प्रकार के समस्त साधन 'तवक्कुल' के सिद्वांत के विपरीत हैं और स्थूलता उत्पन्न करते हैं। उनके अनुसार निर्णायक अवसरों पर उक्त पीड़ितजनों के पक्ष में एक या उससे अधिक माला 'ऊँ शान्ति' का जाप यह नियत बना कर किया जाय कि इसका जो भी सबाब या पुण्यफ़ल हो, वह अमुक व्यक्ति को प्राप्त हो और स्वयं 'राज़ी ब रज़ा' की मनः स्थिति कायम करने की कोशिश करें। इसके अतिरिक्त 'भूत' 'प्रेत' इत्यादि योनियों में फँसी जीवात्माएँ भिन्न-भिन्न प्रयोजनों से लोगों को परेशान करती हुयी देखी व सुनी जाती हैं। ऐसे में भी इस अनुष्ठान को किया जा सकता है।

आध्यात्मिक विषयों पर चर्चा के मध्य, यों तो लाभ-हानि का तस्करा बिलकुल बेमानी है, हाँ अपेक्षित परिवर्तन की बात अवश्य कही जा सकती है। इसमें सबसे अहम् और सबसे बड़ी बात यह है कि हम इसके अंर्तगत अपने द्वारा कृत इस आध्यात्मिक साधना (शान्तिपाठ) के फल का दान करते हैं, जिसके परिणाम स्वरूप, ईश्वरत्त्व ही देते हैं और ईश्वरत्व ही लेते हैं, 'तवक्कुल' (साँसारिक साधनों का भरोसा हटा कर समस्त कार्य ईश्वर की मर्ज़ी पर छोड़ देते हैं) का भाव बलवान होता है। आध्यात्मिक गणित के समीकरण (कुल-कुल=कुल) अर्थात् कुल में से कुल दे दिया तब भी 'कुल' शेष रहा के सिद्वांत के स्पष्ट दर्शन होते हैं। फतेहगढ़ (उत्तर प्रदेश) के वार्षिक भंडारों के अवसर पर 'महासमाधि मंदिर' के अंदर क्रमिक 'अखंड शांति पाठ' से जहाँ एक ओर ईश्वरत्व के तैलधारावत बहाव का विस्तार होता ही है, दूसरी ओर रात्रि जागरण के समय इससे जुड़े हुए प्रबंध तंत्र की सुरक्षा का प्रश्न भी स्वचालित तौर पर हल हो जाता है।

इसकी क्रियाविधि अति सरल व सहज होने के कारण इसमें 'तरकीब' सर्वथा गौण है, क्लिष्टता नहीं है अतः अभ्यासी का लगाव स्वतः ही हो जाता है और वह बिना किसी बाहरी दबाव के रुचिपूर्वक इसका निष्पादन करता है।

'शांतिपाठ' के समापन पर, सबके मध्य प्रसाद रख कर याचना की मुद्रा में हाथ ऊपर उठा कर मन ही मन शान्त भाव से निम्नलिखित दुआ पढ़नी चाहिए।

(1) 'हे परमपिता परमात्मा, हे समर्थ सद्गुरुदेव, हे श्री श्री लालाजी महाराज।
(2) 'हम आपके बहुत ही कमज़ोर और नालायक बन्दे हैं। इस लायक नहीं कि आपके नज़दीक भी आ सकें, किन्तु अपने सद्गुरुदेव .....की निस्बत से हम आपमें अपना ईमान लाये हैं।'
(3) 'इस सामूहिक/माला शान्तिपाठ का जो भी सबाब या पुण्यफल हो वह..... (अमुक व्यक्ति/संत) को आपके माध्यम से पहुँचे। आमीन आमीन आमीन।'

उपरोक्त दुआ के तीन खंड हैं। खंड 'एक' 'दो' सभी में सर्वनिष्ठ हैं। शेष खंड 'तीन' के निमित्त अपने विवेक के अनुसार 'मूलपाठ' में परिवर्तन कर सकते हैं। जैसे यदि शांतिपाठ, पूज्य श्री श्री लालाजी महाराज के लिए है तो.....'आपकी ज़ात पाक को मेरे प्रणाम के साथ पहुँचे और स्वीकार किया जाय। इसी प्रकार किसी प्रियजन की पीड़ा के निमित्त.....को आपके आशीर्वाद के साथ प्राप्त हो' इत्यादि इत्यादि।

ऊँ शांति ! ऊँ शांति !! ऊँ शांति !!!

एक सूफ़ी फ़कीर थे, शेख फ़रीद। उनकी प्रार्थना में एक बात हमेशा होती थी। उनके शिष्य पूछने लगे कि यह बात हमारी समझ में नहीं आती, हम भी प्रार्थना करते हैं, औरों को भी प्रार्थना करते देखा है, लेकिन यह बात हमें कभी समझ में नहीं आती, आप रोज-रोज यह क्या कहते हो कि हे प्रभु, थोड़ा दुख मुझे रोज देते रहना! यह भी कोई प्रार्थना है? लोग प्रार्थना करते हैं, सुख दो; और आप प्रार्थना करते हो, हे प्रभु, थोड़ा दुख रोज देते रहना। फ़रीद जी ने कहा कि सुख में तो मैं सो जाता हूँ और दुख मुझे जगाता है। सुख में तो मैं अक्सर परमात्मा को भूल जाता हूँ और दुख में मुझे उसकी याद आती है। दुख मुझे उसके करीब लाता है। इसलिए मैं प्रार्थना करता हूँ, हे प्रभु, इतना कृपालु मत हो जाना कि सुख-ही-सुख दे देना। क्योंकि मुझे अभी अपने पर भरोसा नहीं है। तू सुख-ही-सुख दे तो मैं सो ही जाऊँ! जगाने को ही कोई बात न रह जाए। अलार्म ही बंद हो गया। तू अलार्म बजाता रहना, थोड़ा-थोड़ा दुख देते रहना, ताकि याद उठती रहे, मैं तुझे भूल न पाऊँ, तेरा विस्मरण न हो जाए।

प्रेरक प्रसंग

भाव व दृढ़ विश्वास

परम सिद्ध सन्त रामदास जी जब प्रार्थना करते थे तो कभी उनके होंठ नहीं हिलते थे !

शिष्यों ने पूछा - हम प्रार्थना करते हैं, तो होंठ हिलते हैं।

आपके होंठ नहीं हिलते ? आप पत्थर की मूर्ति की तरह खड़े हो जाते हैं। आप कहते क्या हैं अन्दर से? क्योंकि अगर आप अन्दर से भी कुछ कहेंगे, तो होंठो पर थोड़ा कंपन आ ही जाता है। चेहरे पर बोलने का भाव आ जाता है। लेकिन वह भाव भी नहीं आता !

सन्त रामदास जी ने कहा- मैं एक बार राजधानी से गुजरा और राजमहल के सामने द्वार पर मैंने सम्राट को खड़े देखा, और एक भिखारी को भी खड़े देखा !

वह भिखारी बस खड़ा था। फटे-चीथड़े थे शरीर पर। जीर्ण-जर्जर देह थी, जैसे बहुत दिनों से भोजन न मिला हो। शरीर सूख कर कांटा हो गया। बस आंखें ही दीयों की तरह जगमगा रही थी। बाकी जीवन जैसे सब तरफ से विलीन हो गया हो। वह कैसे खड़ा था यह भी आश्चर्य था। लगता था अब गिरा तब गिरा।

सम्राट उससे बोला- ''बोलो क्या चाहते हो?''

उस भिखारी ने कहा- ''अगर मेरे आपके द्वार पर खड़े होने से, मेरी मांग का पता नहीं चलता, तो कहने की कोई जरूरत नहीं। क्या कहना है? और मैं द्वार पर खड़ा हूँ, मुझे देख लो। मेरा होना ही मेरी प्रार्थना है।''

सन्त रामदास जी ने कहा- ''उसी दिन से मैंने प्रार्थना बंद कर दी। मैं परमात्मा के द्वार पर खड़ा हूँ। वह देख लेंगे। मैं क्या कहूं? अगर मेरी स्थिति कुछ नहीं कह सकती, तो मेरे शब्द क्या कह सकेंगे?''

अत: भाव व दृढ़ विश्वास ही सच्ची परमात्मा की याद के लक्षण हैं, यहाँ कुछ मांगना शेष नहीं रहता। आपका प्रार्थना में होना ही पर्याप्त है।

(2)

सूफी संतों की निरहंकारिता

सूफी संत अमर से एक प्रेमी ने पूछा कि यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं लोगों को शुभ मार्ग का उपदेश देना शुरू करूँ। वे बोले कि ''ऐसा करने से अगर तुम्हें मान की रुचि

बढ़ी और बड़ाई का बवण्डर उड़ा ले गया तो इससे तुम्हारा अपकार ही होगा- यही मेरे चित्त में भय है।''

संत मलिक दीनार ने कहा था कि ''यदि कोई पुरुष सभा में आकर कहे कि जो सबसे निम्न कोटि का आदमी हो, वह बाहर चला जाये तो मैं सबसे पहले उठ पड़ूँगा।'' यह होती है संतों की निरहंकारिता। वे परमात्मा के निकट होते हुए भी अपने को तुच्छ और कुटिल जानते रहते हैं।

संत वली ने कहा था कि ''जो कोई नरक में जाने वाले आदमी को देखना चाहे तो वह उसे देखे जो स्वयं तो बैठा हो और दूसरे लोग उसके सामने खड़े हों।'' आगे उन्होंने कहा है कि ''कोई कितना भी भजन करे, आगे चलकर ऐसा जान पड़ता है कि यह तो भगवान की मुझ पर परम करुणा है कि जो मैं गाहे-बगाहे उनकी याद कर लिया करता हूँ।''

महात्मा दाऊद ने लिखा है कि ''मैं सारी रात मालिक का भजन करता था और दिन भर निराहार रहता था। एक बार मैंने भगवान से प्रार्थना की कि 'प्रभु! मैं तो इतनी तपस्या करता हूँ आप मुझ पर कृपा करें।'' तब उन्हें आकाशवाणी हुई कि ''दाऊद! तुम्हें यह भजन करने का पुरुषार्थ मेरे सिवा और कहाँ से मिला? अच्छा, अब एक क्षण के लिए मैं तुम्हें अपनी सहायता से अलग करता हूँ।'' वे लिखते हैं कि ''बस उसी क्षण मुझसे एक ऐसा पाप बना कि उसी के कारण तिरस्कृत और लज्जित होकर मैं सारी आयु रोता रहा।''

(3)

माथे का टीका

काफी समय पहले की बात है कि एक मन्दिर के बाहर बैठ कर एक भिखारी भीख माँगा करता था। (वह एक बहुत बड़े महात्मा जी का शिष्य था जो कि एक पूर्ण संत थे।) उसकी उम्र कोई साठ को पार कर चुकी थी ।

आने जाने वाले लोग उसके आगे रखे हुए पात्र में कुछ न कुछ डाल जाते थे। लोग कुछ भी डाल दें, उसने कभी आँख खोल कर भी न देखा था कि किसने क्या डाला। उसकी इसी आदत का फायदा उसके आस पास बैठे अन्य भिखारी तथा उनके बच्चे उठा लेते थे। वे उसके पात्र में से थोड़ी-थोड़ी देर बाद हाथ साफ कर जाते थे। कई उसे कहते भी थे कि, सोया रहेगा तो तेरा सब कुछ चोरी जाता रहेगा। वह भी इस कान से सुन कर उधार से निकाल देता था। किसी को क्या पता था कि वह प्रभु के प्यार में रंगा हुआ था। हर वक्त गुरु की याद उसे अपने में डुबाये रखती थी।

एक दिन ध्यान की अवस्था में ही उसे पता लगा कि उसकी अपनी उम्र नब्बे तक पहुँच जायेगी। यह जानकर वह बहुत उदास हो गया। जीवन पहले ही इतनी कठिनाइयों से गुजर रहा था और ऊपर से इतनी लम्बी अपनी उम्र की जानकारी– वह सोच–सोच कर परेशान रहने लग गया। एक दिन उसे अपने गुरु की उम्र का ख़्याल आया। उसे मालूम था कि गुरुदेव की उम्र पचास के आसपास थी। पर ध्यान में उसकी जानकारी में आया कि गुरुदेव तो बस दो बरस ही और रहेंगे।

गुरुदेव की पूरी उम्र की जानकारी के बाद वह और भी उदास हो गया। बार बार आँखों से बूँदे टपकने लग जाती थीं। पर उसके अपने बस में तो नहीं था कुछ भी। कर भी क्या सकता था, सिवाए आँसू बहाने के।

एक दिन सुबह कोई पति पत्नी मन्दिर में आये। वे दोनों भी उसी गुरु के शिष्य थे जिसका शिष्य वह भिखारी था। वे तो नहीं जानते थे भिखारी को, पर भिखारी को मालूम था कि दोनों पति पत्नी भी उन्ही गुरु जी के शिष्य थे।

दोनों पति पत्नी लाइन में बैठे भिखारियों के पात्रों में कुछ न कुछ डालते हुए उस भिखारी के पास पहुँच गये। भिखारी ने दोनों हाथ जोड़ कर उन्हें ऐसे ही प्रणाम किया जैसे कोई घर में आये हुए अपने गुरु भाईओं को करता है।

भिखारी के प्रेम पूर्वक किये गये प्रणाम से वे दोनों प्रभावित हुए बिना न रह सके। भिखारी ने उन दोनों के भीतर बैठे हुए अपने गुरुदेव को प्रणाम किया था, इस बात को वे जान न पाए। उन्होंने यही समझा कि भिखारी ने उनसे कुछ अधिक की आस लगाई होगी जो इतने प्यार से नमस्कार किया है। पति ने भिखारी की तरफ देखा और बहुत प्यार से पुछा, कुछ कहना है या कुछ और अधिक चाहिए? भिखारी ने अपने पात्र में से एक सिक्का निकाला और उनकी तरफ बढ़ाते हुए बोला, जब गुरुदेव के दर्शन को जायो तो मेरी तरफ से ये सिक्का उनके चरणों में भेंट स्वरूप रख देना। पति पत्नी ने एक दुसरे की तरफ देखा, उसकी श्रद्धा को देखा, पर एक सिक्का, वो भी गुरु के चरणों में? पति सोचने लगा क्या कहूँगा, कि एक सिक्का कभी एक सिक्का गुरु को भेंट में तो शायद किसी ने नहीं दिया होगा, कभी नहीं देखा।

पति कभी भिखारी की श्रद्धा को देखे तो कभी सिक्के को देखे। कुछ सोचते हुए पति बोला, ''आप इस सिक्के को अपने पास रखो, हम वैसे ही आपकी तरफ से उनके चरणों में रख देंगे।'' ''नहीं आप इसी को रखना उनके चरणों में।'' भिखारी ने बहुत ही नम्रता पूर्वक और दोनों हाथ जोड़ते हुए कहा। उसकी आँखों से झर–झर आंसू भी निकलने लग गये।

भिखारी ने वहीं से एक कागज के टुकड़े को उठा कर सिक्का उसी में लपेट कर दे दिया। जब पति पत्नी चलने को तैयार हो गये तो भिखारी ने पुछा, ''वहाँ अब भंडारा कब होगा?''

''भंडारा तो कल है, कल गुरुदेव का जन्म दिवस है न।''

भिखारी की आँखे चमक उठीं। लग रहा था कि वह भी पहुँचेगा, गुरुदेव के जन्म दिवस के अवसर पर।

दोनों पति पत्नी उसके दिए हुए सिक्के को लेकर चले गये। अगले दिन गुरुदेव के जन्म दिवस उपलक्ष में आश्रम में भंडारा था। वह भिखारी भी सुबह सवेरे ही आश्रम पहुँच गया। भंडारे के उपलक्ष में बहुत शिष्य आ रहे थे। पर भिखारी की हिम्मत न हो रही थी कि वह भी भीतर चला जाए। वह वहीं एक तरफ खड़ा हो गया कि शायद गेट पर खड़ा सेवादार उसे भी मौका दे भीतर जाने के लिए। पर सेवादार उसे बार बार वहाँ से चले जाने को कह रहा था। दोपहर भी निकल गयी, पर उसे भीतर न जाने दिया गया। भिखारी वहाँ गेट से हट कर थोड़ी दूर जाकर एक पेड़ की छाँव में खड़ा हो गया। वहीं गेट पर एक कार में से उतर कर दोनों पति पत्नी भीतर चले गये। एक तो भिखारी की हिम्मत न हुई कि उन्हें जा कर अपने सिक्के की याद दिलाते हुए कह दे कि मेरी भेंट भूल न जाना। और दूसरा वे दोनों शायद जल्दी में भी थे इसलिए जल्दी से भीतर चले गये। और भिखारी बेचारा, एक गरीबी, एक तंग हाली और फटे हुए कपड़े उसे बेबस किये हुए थे कि वह अंदर न जा सके।

दूसरी तरफ दोनों पति पत्नी गुरुदेव के सम्मुख हुए, बहुत भेंटे और उपहार थे उनके पास, गुरुदेव के चरणों में रखे। पत्नी ने कान में कुछ कहा तो पति को याद आ गया उस भिखारी की दी हुई भेंट। उसने कागज के टुकड़े में लिपटे हुए सिक्के को जेब में से बाहर निकाला, और अपना हाथ गुरु के चरणों की तरफ बढ़ाया ही था तो गुरुदेव आसन से उठ खड़े हुए, गुरुदेव ने अपने दोनों हाथ आगे बढ़ाकर सिक्का अपने हाथ में ले लिया, उस भेंट को गुरुदेव ने अपने मस्तक से लगाया और पूछा, ये भेंट देने वाला कहाँ है, वो खुद क्यों नही आया?

गुरुदेव ने अपनी आँखों को बंद कर लिया, थोड़ी ही देर में आँख खोली और कहा, वो बाहर ही बैठा है, जाओ उसे भीतर ले आयो। पति बाहर गया, उसने इधर उधर देखा। उसे वहीं पेड़ की छांव में बैठा हुआ वह भिखारी नजर आ गया। पति भिखारी के पास गया और उसे बताया कि गुरुदेव ने उसकी भेंट को स्वीकार किया है और भीतर भी बुलाया है। भिखारी की आँखें चमक उठीं। वह उसी के साथ भीतर

गया, गुरुदेव को प्रणाम किया और उसने गुरुदेव को अपनी भेंट स्वीकार करने के लिए धन्यवाद दिया।

गुरुदेव ने भी उसका हाल जाना और कहा- ''प्रभु के घर से कुछ चाहिए तो कह दो आज मिल जायेगा।''

भिखारी ने दोनों हाथ जोड़े और बोला- ''एक भेंट और लाया हूँ आपके लिए, प्रभु के घर से यही चाहता हूँ कि वह भेंट भी स्वीकार हो जाये।

''हाँ होगी, लायो कहाँ है?'' वह तो खाली हाथ था, उसके पास तो कुछ भी नजर न आ रहा था भेंट देने को, सभी हैरान होकर देखने लग गये कि क्या भेंट होगी।

''हे गुरुदेव, मैंने तो भीख मांग कर ही गुजारा करना है, मैं तो इस समाज पर बोझ हूँ। इस समाज को मेरी तो कोई जरूरत ही नहीं है। पर हे मेरे गुरुदेव, समाज को आपकी सख़्त जरूरत है, आप रहोगे तो अनेकों को अपने घर वापिस ले जाओगे। इसीलिए मेरे गुरुदेव, मैं अपनी बची हुई उम्र आपको भेंट स्वरूप दे रहा हूँ। कृपया इसे कबूल करें।'' इतना कहते ही वह भिखारी गुरुदेव के चरणों पर झुका और फिर वापिस न उठा। कभी नहीं उठा।

वहाँ कोहराम मच गया कि ये क्या हो गया, कैसे हो गया? सभी प्रश्न वाचक नजरों से गुरुदेव की तरफ देखने लग गये ।

एक ने कहा- ''हमने भी कई बार कईओं से कहा होगा कि भाई मेरी उम्र आपको लग जाए, पर हमारी तो कभी नहीं लगी। पर ये क्या, ये कैसे हो गया?''

गुरुदेव ने कहा- ''इसकी बात सिर्फ इसलिए सुन ली गयी क्योंकि इसके माथे का टीका चमक रहा था। आपकी इसलिए नहीं सुनी गयी क्योंकि माथे पर लगे टीके में चमक न थी।

सभी ने उसके माथे की तरफ देखा, वहाँ तो कोई टीका न लगा था। गुरुदेव सबके मन की उलझन को समझ गये और बोले- ''टीका ऊपर नहीं, भीतर के माथे पर लगा होता है।

(4)

मनुष्य जीवन की सच्चाई

एक गाय घास चरने के लिए एक जंगल में चली गई। शाम ढलने के करीब थी। उसने देखा कि एक बाघ उसकी तरफ दबे पांव बढ़ रहा है। वह डर के मारे इधर-उधर भागने लगी। वह बाघ भी उसके पीछे दौड़ने लगा। दौड़ते हुए गाय को सामने एक तालाब दिखाई दिया। घबराई हुई गाय उस तालाब के अंदर घुस गई। वह बाघ भी

उसका पीछा करते हुए तालाब के अंदर घुस गया। तब उन्होंने देखा कि वह तालाब बहुत गहरा नहीं था। उसमें पानी कम था और वह कीचड़ से भरा हुआ था। उन दोनों के बीच की दूरी काफी कम थी। लेकिन अब वह कुछ नहीं कर पा रहे थे। वह गाय उस कीचड़ के अंदर धीरे-धीरे धंसने लगी। वह बाघ भी उसके पास होते हुए भी उसे पकड़ नहीं सका। वह भी धीरे-धीरे कीचड़ के अंदर धंसने लगा। दोनों ही करीब करीब गले तक उस कीचड़ के अंदर फंस गए। दोनों हिल भी नहीं पा रहे थे। गाय के करीब होने के बावजूद वह बाघ उसे पकड़ नहीं पा रहा था।

थोड़ी देर बाद गाय ने उस बाघ से पूछा- ''क्या तुम्हारा कोई मालिक है?''

बाघ ने गुर्राते हुए कहा- ''मैं तो जंगल का राजा हूँ। मेरा कोई मालिक नहीं। मैं खुद ही जंगल का मालिक हूँ।''

गाय ने कहा- ''लेकिन तुम्हारी उस शक्ति का यहाँ पर क्या उपयोग है?''

उस बाघ ने कहा- ''तुम भी तो फँस गई हो और मरने के करीब हो। तुम्हारी भी तो हालत मेरे जैसी ही है।''

गाय ने मुस्कुराते हुए कहा- ''बिलकुल नहीं। मेरा मालिक जब शाम को घर आएगा और मुझे वहां पर नहीं पाएगा तो वह ढूंढते हुए यहाँ जरूर आएगा और मुझे इस कीचड़ से निकाल कर अपने घर ले जाएगा। तुम्हें कौन ले जाएगा?''

थोड़ी ही देर में सच में ही एक आदमी वहां पर आया और गाय को कीचड़ से निकालकर अपने घर ले गया। जाते समय गाय और उसका मालिक दोनों एक दूसरे की तरफ कृतज्ञता पूर्वक देख रहे थे। वे चाहते हुए भी उस बाघ को कीचड़ से नहीं निकाल सकते थे, क्योंकि उनकी जान के लिए वह खतरा था।

गाय समर्पित हृदय का प्रतीक है।

बाघ अहंकारी मन है। और

मालिक ईश्वर का प्रतीक है।

कीचड़ यह संसार है। और

यह संघर्ष अस्तित्व की लड़ाई है।

किसी पर निर्भर नहीं होना अच्छी बात है, लेकिन मैं ही सब कुछ हूँ, मुझे किसी के सहयोग की आवश्यकता नहीं है, यही अहंकार है, और यहीं से विनाश का बीजारोपण हो जाता है।

ईश्वर से बड़ा इस दुनिया में सच्चा हितैषी और कोई नहीं होता, क्योंकि वही अनेक रूपों में हमारी रक्षा करता है।

(5)

निस्वार्थ सेवा

एक मजदूर नया-नया दिल्ली आया। पत्नी को किराए के मकान मे छोड़कर काम की तलाश में निकला। एक जगह गुरुद्वारे में सेवा चल रही थी। कुछ लड़कों को काम करते देखा तो उनसे पूछा- ''क्या मैं यहाँ काम कर सकता हूँ?'' लड़को ने 'हाँ' कहा।

मजदूर- ''तुम्हारे मालिक कहाँ हैं''?

लड़को को शरारत सूझी और बोले- ''मालिक बाहर गया है। तुम बस काम पर लग जाओ। हम बता देंगे कि आज से लगे हो।''

मजदूर खुश हुआ और काम करने लगा। रोज सुबह समय से आता शाम को जाता। पूरी मेहनत लगन से काम करता। ऐसे ह"ता निकल गया।

मजदूर ने फिर लड़कों से पूछा- ''मालिक कब आयेंगे?'' लडकों ने फिर ह"ता कह दिया। फिर से ह"ता निकल गया।

मजदूर लडकों से बोला- ''भैया आज तो घर पर खाने को कुछ नहीं बचा। पत्नी बोली कुछ पैसे लाओगे तभी खाना बनेगा। मालिक से हमें मिलवा दो।''

लड़कों ने बात अगले दिन तक टाल दी। मगर मजदूर के जाते ही उन्हें अपनी गलती का एहसास होने लगा और उन्होने आखिर फैसला किया कि वो मजदूर को सब कुछ सच-सच बता देंगे। ये गुरूद्वारे की सेवा है। यहाँ कोई मालिक नहीं। ये तो हम अपने गुरु महाराज जी की सेवा कर रहे हैं।

अगले दिन मजदूर आया तो सभी लड़कों के चेहरे उतरे थे। वो बोले- ''अंकल जी, हमें माफ कर दो। हम अब तक आपसे मजाक कर रहे थे।'' और सारी बात बता दी।

मजदूर हँसा ओर बोला- ''मजाक तो आप अब कर रहे हो। हमारे मालिक तो सचमुच बहुत अच्छे हैं। कल दोपहर में हमारे घर आये थे। पत्नी को एक महीने की पगार ओर 15 दिनों का राशन देकर गए। कौन मालिक मजदूर को घर पर पगार देता है, राशन देता है। सचमुच हमारे मालिक बहुत अच्छे हैं।'' और फिर अपने काम पर मेहनत से जुट गया।

लड़कों की समझ में आ गया जो बिना स्वार्थ के गुरु की सेवा करता है, गुरू हमेशा उसके साथ रहते हैं और उसके दुख तकलीफ दूर करते रहते हैं।

हर कृति ईश्वर से जोड़ दें

प्रत्येक क्रिया ईश्वर के साथ जोड़ते ही जीवन में एकदम अद्‌भुत शक्ति आती है। हर कृति ईश्वर के साथ जोड़ने की युक्ति हमें सध गई तो उस कुंजी से समस्याओं के सब ताले खुल जायेंगे। जो कुछ भी सेवा कार्य करें, उसको भगवान से जोड़ दें। बस, काम बन गया। राम के गुलाम हो जाओ। वह कठिन वेद मार्ग, वह यज्ञ, स्वाहा, स्वधा, श्राद्ध, तर्पण सब हमें मोक्ष की ओर ले जायेंगे। परन्तु उसमें अधिकारी और अनाधिकारी का झमेला खड़ा होता है। हमें उनकी ज़रूरत ही नहीं। इतना ही करें कि जो कुछ करते हैं, वह ईश्वरार्पण कर दें। अपनी प्रत्येक कृति का संबन्ध ईश्वर से जोड़ दें। जीवन में कितनी क्रिया की है, इसका महत्व नहीं है। ईश्वरार्पण बुद्धि से यदि एक भी क्रिया की हो, तो वही हमें पूरा अनुभव करा देगी। जीवन के सादे कर्मों को, सादी क्रियाओं को परमेश्वर को अर्पण कर देने से जीवन में सामर्थ्य आ जायेगा, मोक्ष हाथ लग जायेगा। कर्म करके उसका फल न छोड़कर, उसे ईश्वर को अर्पण कर देना। एक ओर से कर्म और दूसरी ओर से भक्ति, दोनों को जोड़कर जीवन को सुन्दर बनाते चलें। फल को त्यागना नहीं, फेंकना नहीं, बल्कि भगवान से जोड़ देना है। बोने और फेंक देने में अन्तर है। बोया हुआ थोड़ा भी हो तो अनंत गुना होकर मिलता है। फेंका हुआ यों ही नष्ट हो जाता है। जो कर्म ईश्वर को अर्पण किया उसे बोया हुआ समझो। उससे जीवन में अपार आनन्द भर जायेगा, अपार पवित्रता आ जायेगी।

प्रत्येक कृति ईश्वर के साथ जोड़ देनी चाहिए। उसके साथ हम बातचीत कर सकें, उससे जवाब प्राप्त कर सकें और तदानुसार आचरण करने की हिम्मत भी हो – यह सब होने की ज़रूरत है। यह बहुत बड़ी प्रक्रिया है। यह भोलेपन की बात नहीं है। जिस प्रकार आधुनिक विज्ञान अनुभव पर आधारित है, उसी प्रकार यह भी अनुभूति पर आधारित है। इसलिए हम अपने काम को ईश्वर के साथ जोड़ दें।

सत्कर्म चाहिए, निष्कामता चाहिए और दोनों के अलावा समर्पण चाहिए। भावना के बिना कर्म स्वयमेव समर्पण होना संभव नहीं है। भावना ईश्वर के साथ जुड़ जाये, तो कर्म ही नहीं, हर कृति, नींद भी ईश्वर से जुड़ जायेगी।

निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन

निमित्तमात्र बनने का अर्थ है, सदैव भगवान का स्मरण करें और अहंकार न रखें कि 'यह काम मैं करने जा रहा हूँ' यही भावना हो कि ईश्वर कर रहा है, मैं नहीं। मैं काम कर रहा हूँ, यह भावना हो तो मैं भगवान से अलग हो जाता हूँ। लेकिन यह मैं नहीं कर रहा, वह मुझसे करवा रहा है, मैं उसके हाथ का साधन हूँ, यह भाव हो तो इसका मतलब होगा, ईश्वर को जीवन के प्रत्येक क्षण में याद कर रहा हूँ।

ईश्वर के हाथ का साधन, औजार बनने का अर्थ है कि एक ओर से निरहंकारिता, शून्यता और दूसरी ओर से पुरुज़ार्थ की पराकाष्ठा – प्रयत्न की परिपूर्णता। 'सव्यसाची' यानी दाहिने हाथ से ही नहीं बायें हाथ से भी काम करने को तैयार रहने वाला।

कर्म की तीन अवस्था

कर्म की लीगल (कानूनी), मॉरल (नैतिक), स्पिरीच्युअल (आध्यात्मिक) तीन अवस्थायें हैं। कानूनी मिनिमम कर्त्तव्य कहा जायेगा। जब गैर कानूनी बात सामने आती है तब कानूनी तरीके से बरतना चाहिए। जब कानून विरुद्ध नैतिकता का प्रश्न आता है तब नैतिक तरीके से बरतें। जब नैतिक और आध्यात्मिक के बीच में प्रश्न खड़ा होता है तब आध्यात्मिक को ग्रहण करें। गौतम बुद्ध ने पत्नी का त्याग किया और घर छोड़कर निकल गये, यह नैतिक नहीं, आध्यात्मिक कर्म था।

– (आचार्य विनोबा भावे लिखित पुस्तक 'कर्म विवेचना' से साभार)

जैसे सुनार से सोना चाँदी, जेवर खरीदकर आते हैं चुपचाप... मौन में सीधे घर आ जाते हैं कि किसी को भनक भी नहीं लगने देते कि हम सोना खरीदकर आये हैं, ऐसे ही सत्संग से जब घर लौटें तो मौन में प्रभु का सुमिरन करते हुए लौटें। क्योंकि ज्ञान के हीरे-मोती रूपी कीमती वचन जो हम लेकर आते हैं कहीं व्यर्थ की बातों में हम गवाँ न दें।

रामाश्रम सत्संग की वेबसाइट तथा फेसबुक ग्रुप्स

रामाश्रम सत्संग परिवार के हम सभी भाई-बहिन भाग्यशाली हैं कि हमारे आराध्य गुरुजनों ने अपनी बहुमूल्य विरासत के रूप में आध्यात्मिक-ज्ञान का अत्यन्य समृद्धशाली भण्डार हमें प्रदान किया है जिसके अध्ययन-मनन-अनुसरण से हम 'गुरु-कृपा' प्राप्त कर अपनी आध्यात्मिक यात्रा के पथ पर सुगमता पूर्वक आगे बढ़ सकते हैं तथा अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं। हमारी यह विरासत सत्संग-परिवार के सभी साधकों तक सुगमता पूर्वक पहुँच सके, इस उद्देश्य से आधुनिक समय की आवश्यकता के अनुरूप, हमने अपने सभी साहित्य का डिजिटलीकरण करके निम्नलिखित प्लेटफार्म पर उपलब्ध कराया है :

(1) **वेबसाइट** - सत्संग की अपनी वेबसाइट www.ramashram.org.in है जिसे हाल में ही नए कलेवर में अपडेट किया गया है। इस वेबसाइट पर रामाश्रम सत्संग की स्थापना की पृष्ठभूमि, उसके दर्शन, सिद्धातों एवं साधना पद्धति, वर्तमान कार्यकारिणी एवं शिक्षक वर्ग की जानकारी, आचार्यों का जीवन-वृत तथा परमसन्त सद्गुरु महात्मा रामचन्द्र जी महाराज, महात्मा डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज के प्रवचन टेक्स्ट फॉर्म में तथा महात्मा डॉ. करतार सिंह जी महाराज के प्रवचनों की ऑडियो क्लिप्स, समस्त डिजिटल पब्लिकेशन्स - 2012 से 2019 तक के समस्त राम सन्देश की पीडीएफ, संत वचन भाग 1 से 9, संत प्रसादी के 16 भाग तथा सत्संग की समस्त 23 पुस्तकों की इ-बुक्स उपलब्ध हैं। 4 अलग-अलग फोटो गैलरीज में पूज्य गुरुजनों के मनोहारी चित्र, भंडारों तथा क्षेत्रीय सत्संग के फोटो, वीडियो तथा सत्संग के विभिन्न केन्द्रों द्वारा धर्मार्थ सेवा गतिविधियों के फोटो उपलब्ध कराये गए हैं। समय-समय पर आयोजित होने वाले भण्डारों तथा सत्संगों की जानकारी सूचना पटल पर प्रदर्शित की जाती है। संक्षेप में इस वेबसाइट पर ● 12 लेख; ● 50 प्रवचन टेक्स्ट फॉर्म में; ● 107 प्रवचनों की ऑडियो क्लिप्स; ● 78 डिजिटल पब्लिकेशन्स; ● 70 फोटो; ● 3 वीडियो; और ● 26 भजन की ऑडियो क्लिप्स तथा एनिमेशन में 15 फोटो उपलब्ध हैं।

हमारा यह प्रयास रहेगा कि वेबसाइट को नियमित रूप से अपडेट करते रहें तथा नया कंटेंट उपलब्ध कराते रहें ताकि उपयोगकर्ताओं की वेबसाइट में रुचि बनी रहे। वेबसाइट पर उपलब्ध सामग्री न केवल देखी/पढ़ी जा सकती है, डाउनलोड भी की जा सकती है।

(2) **सत्संग का फेसबुक ग्रुप** – अपने सत्संग का फेसबुक ग्रुप है जिस पर नियमित रूप से प्रति दिन अपने गुरुजन का एक प्रवचन उनके फोटो के साथ डाला जाता है. इसके अतिरिक्त समय–समय पर आयोजित होने वाले भण्डारों एवं क्षेत्रीय सत्संगों तथा अन्य गतिविधियों के फोटो भी उपलब्ध कराये जाते हैं। वर्तमान में देश–विदेश में ग्रुप के 2500 सदस्य हैं तथा लगभग 200 सदस्य प्रतिदिन लाइक्स/कमैंट्स/शेयर करते हैं। (http://facebook.com/groups/161088253922971)

(3) **फेसबुक डिजिटल पब्लिकेशन्स ग्रुप** – फेसबुक पर ही हमारा डिजिटल पब्लिकेशन्स का अलग ग्रुप है जिसपर हमारे सभी डिजिटल पब्लिकेशन्स – रामसंदेश, प्रवचन संकलन तथा ई–बुक्स – की फाइल्स उपलब्ध हैं. ये सभी पब्लिकेशन्स वेबसाइट पर भी उपलब्ध हैं। (http:///facebook.com/groups/503053436880882)

उपरोक्त दोनों ही ग्रुप्स की सदस्यता के लिए कोई भी व्यक्ति ग्रुप की लिंक पर रिक्वेस्ट डालकर आवेदन कर एडमिन के कन्फर्मेशन का बाद सदस्यता प्राप्त कर सकता है.

हम आशा करते हैं सत्संग परिवार के सभी भाई–बहिन उपरोक्त सुविधाओं का नियमित उपयोग कर लाभान्वित होकर 'गुरु कृपा' से आध्यात्मिक पथ पर अपनी यात्रा को सुगम बनायेंगे। ईश्वर आप सबका कल्याण करें।

सत्संग की वेबसाईट और फेसबुक पेज के इस कार्य को प्रो. आदर्श किशोर जी ने जो एक नया प्रारूप दिया है वह अत्यन्त सराहनीय है और हम अपनी ओर से और समस्त सत्संग परिवार की ओर से उनका आभार व्यक्त करते हैं। हमारी ये कामना है कि आप आगे भी सत्संग की सेवा इसी अथक परिश्रम और निष्ठा के साथ निभाते रहेंगे। शुभकामनाओं सहित,

–डॉ. शक्ति कुमार सक्सेना

नव वर्ष की बधाई

आप सभी भाई-बहनों को नववर्ष 2020 की बहुत-बहुत बधाई। ईश्वर से प्रार्थना है कि आप सपरिवार सुखी, स्वस्थ और संतुष्ट रहें और ईश्वर प्रेम में बढ़ते उत्साह और आनन्द से दिनोंदिन प्रगति करते रहें।

आपने जो इस अवसर पर मेरे और मेरे परिवार के प्रति शुभकामनायें व्यक्त की हैं, उनके प्रति हम अति आभारी हैं तथा सभी को सप्रेम धन्यवाद देते हैं।

– शक्ति कुमार सक्सेना

राम संदेश के नियम

1. आध्यात्मिक विद्या के गुप्त और अनुभवी रहस्यों तथा सदाचार–शिक्षा को सरल भाषा में जनता तक पहुँचाना हमारी राम सन्देश पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है।
2. राम–सन्देश में आत्मिक, नैतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लेख ही छपते हैं, राजनैतिक या रोमांचक लेख नहीं। रचनाओं में काट–छाँट करने अथवा छापने या न छापने की स्वतंत्रता सम्पादक को है।
3. राम सन्देश का वर्ष जनवरी में आरम्भ होता है। वार्षिक चन्दा 20 (बीस) रुपये है। एक वर्ष से कम तथा आजीवन ग्राहक नहीं बनाये जाते। चन्दा दशहरा भंडारों में या मैनेजर, राम संदेश को, 9–रामाकृष्णा कॉलोनी, जी. टी. रोड, ग़ाजियाबाद (उ.प्र.) 201009 के पते पर दिसम्बर के अंत तक अवश्य भिजवा दें।
4. राम सन्देश डाक द्वारा नहीं भेजा जाता है। इसका वितरण भंडारों पर ही किया जाता है। कृपया अपनी प्रति लेना न भूलें।

राम संदेश

रजिस्टर्ड ऑफिस

9–रामाकृष्णा कॉलोनी, जी.टी. रोड,
ग़ाज़ियाबाद–201009

मुद्रक, प्रकाशक व संपादक : डॉ. शक्ति कुमार सक्सेना

मुद्रण : अंकोर पब्लिशर्स (प्रा.) लिमिटेड, बी–66, सैक्टर–6, नोएडा–201301